विरागामृत

कृति

विरागामृत

-: प्रवचनांश :-

प.पू. गणाचार्य श्री १०८ विराग सागर जी महाराज

संकलन / संपादन

पू. आर्यिका विशिष्ट श्री माताजी

प्रकाशक :-

श्री सम्यग्ज्ञान दि. जैन विराग विद्या पीठ

बतासा बाजार, भिण्ड (म.प्र.)

प्रसंग :-

प.पू. राष्ट्र संत गणाचार्य श्री १०८ विराग सागर जी महाराज
का १७ वाँ आचार्य पदारोहण के सुअवसर पर

कृति

विरागामृत

प्रवचनांश

प.पू. १०८ गणाचार्य श्री विराग सागर जी महाराज

संकलन / संपादन

पू. आर्यिका विशिष्ट श्री माता जी

पुण्यार्जक

श्रीमान् विजय कुमार शाह श्रीमती निरंजना बेन

मूल्य

४०/- रुपया (पुनः प्रकाशन हेतु)

संस्करण

१००० (I) २००४, भिलाई (छत्ती.)

१००० (II) २००९ गांधीनगर (गुज.)

प्रकाशक / प्राप्ति स्थान :

श्री सम्यग्ज्ञान दिगम्बर जैन विराग विद्या पीठ
बताशा बाजार, भिण्ड (म.प्र.)

मुद्रक

नरेशभाई बी. शाह
पद्मावती प्रिन्टींग प्रेस, उस्मानपुरा,अहमदाबाद - १३.
फोन : (079) 27550268 मो. : 9227215492

२१वीं सदी के ज्योतिपुंजः- गणाचार्य विराग सागर जी

डॉ. के.एल. जैन, प्राचार्य
शासकीय कन्या महाविद्यालय, टीकमगढ़ (म.प्र.)

अपरिमित प्रज्ञा के धनी- 'संत' वह है जिसकी सरलता का कोई अंत न हो। जो संसार से विरक्त होकर स्व-पर कल्याण की भावना में निरत हो, जिसके अन्तः करण में वात्सल्य और स्नेह का निर्झर सतत् प्रवाहमान हो। जिसकी वाणी से जन-जन के कल्याण की कामना के भाव निसृत हो, जिन्होंने ज्ञान की अतुल गहराईयों में उतरकर सृजन के मौलिक स्वरूप को गढ़ा हो। ऐसे अनेक विशेषणों से विभूषित प्रज्ञा के धनी आचार्य विराग सागर जी का इस धारत्री पर अवतरण इस सदी की एक अन्यतम घटना ही मानी जायेगी।

असाधारण व्यक्तित्व के धारक-एक ऐसा व्यक्तित्व जिसमें जादूई तिलस्म का आकर्षण हो, यह आकर्षण है उनके त्याग का साधना का, तप का, चर्या का और उस असाधारण ज्ञान का जिसके कारण श्रावक दीवानगी की हदों को भी पार कर जाता है। आपकी सौम्य मुद्रा के दर्शन मात्र से ही दर्शनार्थियों के कालुष्य का विरेचन हो जाता है। आपके सान्निध्य का सुफल और आशीष का हस्तकमल जीवन को निर्जर और निरामद बना देता है। यही वजह है कि आचार्य विराग सागर जी जहाँ से निकल पड़ते हैं वहाँ के लोग उनके हमेशा-हमेशा के लिए बन जाते है।

अनोखे बचपन का विरल सम्मोहन-दमोह (म.प्र.) जिले के पथरिया ग्राम में पाषाणों के बीच इस हीरे का अवतरण २ मई १९६३ (वैशाख शुक्ल वि.सं. २०२०) को रात्रि ९ बजे हुआ। पुण्यात्मा सेठ श्री कपूरचंद जी एवं जननी श्रीमती श्यामादेवी (आपसे ही दीक्षित एवं समाधिस्थ आर्यिका पूज्य श्री विशान्तश्री माताजी) की कोख से एक ऐसा कमल (अरविन्द) खिला जिसमें अपनी अनुपम सुगन्धी से सारे बुन्देलखण्ड को महका दिया। कभी-कभी आगत की आश्चर्य चकित करने वाली घटनाएँ वर्तमान में ही अपना संकेत देने लगती है। कुछ

ऐसा ही हुआ बालक अरविन्द के साथ, जब वे बचपन में नग्न अवस्था में खड़े होकर हाथ में झाड़ू लेकर (पिच्छी का प्रतीक) माँ से बोले-मुनिराज का पड़गाहन करो । क्योंकि कुछ दिन पूर्व उन्होंने इस तरह के दृश्य को देखा था । उक्त दृश्य का आत्म पटल पर अंकन आज आचार्य विराग सागरजी के रूप में परिलक्षित हो रहा है । यह इस धरित्री का पुण्य उदय ही माना जाएगा ।

बालक अरविन्द की बाल्य अवस्था की क्रियाएँ सम्मोहने की सीमाएँ लाँघने में समर्थ थीं, सेवा कार्य के हद दर्जे की दीवानगी उनमें कूट-कूट कर भरी हुई थी । इसी भावना के कारण बालक अरविन्द सभी को सम्मोहित कर लेते थे । संवेदनशीलता की भावना ने उन्हें प्राणी मात्र की कल्याण कामना से आपूरित कर दिया था । यही कारण है कि आचार्य श्री विराग सागर जी अहर्निश साधना की असीम ऊँचाईयों की ओर अत्यन्त तीव्रता के साथ अग्रसर हो रहे हैं ।

अर्जन और सर्जना के विविध सोपान-बालक अरविन्द की प्रारंभिक शिक्षा पथरिया और इसके उपरांत श्री शांति निकेतन दिगम्बर जैन संस्कृत विद्यालय कटनी में हुई । निष्णात गुरु पंडित जगन्मोहन लाल जी के सान्निध्य ने प्रज्ञा की अन्तर्ज्योति को जागृत कर दिया । ज्ञानाराधना की ललक और वैराग्य भावना की व्यग्रता ने मनोयोग पूर्वक अर्जन की प्रवृत्ति को परवाने चढ़ने का काम किया, परिणाम स्वरुप १६-१७ वर्ष की अवस्था में दि. २० फरवरी १९८० फाल्गुन शुक्ल ५ वि.सं. २०३६ बुढ़ार जिला शहडोल (म.प्र.) में परम पूज्य तपस्वी सम्राट आचार्य श्री सन्मति सागर जी से आपने क्षुल्लक दीक्षा ली तब आपका नाम पू. १ ०५ क्षुल्लक पूर्णसागर जी रखा गया, २०-२१ वर्ष की अल्पायु में दि.९ दिसम्बर १९८३ मागशिर शुक्ला ५ वि.सं. २०४० को औरंगाबाद जिला (महाराष्ट्र) में वात्सल्य रत्नाकर परम पूज्य आचार्य श्री विमल सागर जी महाराज से मुनि दीक्षा ग्रहण की, तब आपका नाम मुनिश्री विराग सागर जी रखा गया । दीक्षा ने शिक्षा के विकास क्रम को गंगा की धारा के समान प्रवाहमान रखने में एक उर्जयन्त-उर्जा से संचरित रखा, जिससे अल्प समय में आप न्याय,

व्याकरण, दर्शन, साहित्य व अध्यात्म के महान चितेरे बन गए ।

महाव्रती की महती प्रभावना-आज का वातावरण विसंगतियों और विद्रूपताओं की कालिमा से कलंकित है । ऐसे वातावरण में मनुष्य का नैतिक विकास हो पाना काफी दुष्कर जान पड़ता है । सर्वत्र हिंसा, अनैतिकता, बेईमानी और झूठ का बोलबाला है, स्वार्थ की संकीर्णताओं ने व्यक्ति को संवेदन शून्य और हृदयहीन बना दिया है, प्रेम और भाईचारे के सद्व्यवहार की अपेक्षाएँ दिनोंदिन क्षीण होती जा रही है-ऐसे वातावरण में महाव्रती का संदेश जीवन में ऐसी उर्जा का संचार करता है जिससे की जीवन की धारा ही बदल जाती है । आचार्य विराग सागर जी ने भ्रमित युवा पीढ़ी को आचरण और नैतिक मूल्यों की दृष्टि से जो दिशा-दृष्टि प्रदान की है वह इस सदी की श्रेष्ठतम घटनाओं में इतिहास के पन्नों पर स्वर्णाक्षरित की जायेगी ।

कुशल संघ संचालक - मोक्ष के आकांक्षी, वीतरागी पथ के पथिक, पदों से अलिप्त मुनि श्री विराग सागर जी महाराज की उत्तरोत्तर साधना, अनुशासन एवं आगमिक प्रणाली से प्रभावित होकर अनेक आत्म हितैषी उनके साथ आत्म-साधना करने के लिए तत्पर हो गये, साथ ही लगभग १० आचार्य परमेष्ठी उनके मनोज्ञ व्यक्तित्व को देखकर उन्हें अपना आचार्य पद देकर संघ का भार सौंपना चाहते थे तथा कितने ही बार तो अनेक आचार्यों ने उनके आचार्य पद की घोषणाएँ की लेकिन मुनि विराग सागर जी ने 'मैं अभी इस योग्य नहीं हूँ', या 'मेरे गुरु अभी विराजमान है,' ऐसा कहकर उसे स्वीकार न किया, फिर भी समय बड़ा बलवान होता है और ऐसा योग आया कि परम पूज्य आचार्य श्री विमलसागर जी महाराज की आज्ञा एवं आशीर्वाद तथा आचार्यश्री विद्यासागार जी महाराज एवं आचार्य श्री सुमति सागर जी आदि अनेक आचार्यों के आशीर्वाद से आचार्यत्व के गुणों से परिपूर्ण होने के कारण चतुर्विध संघ, द्रोणगिरि की समाज, पंडित दरबारीलाल जी कोठिया (बीना) आदि अनेक विद्वानों एवं श्रेष्ठियों ने द्रोणगिरि सिद्धक्षेत्र पर दि.८-११-१९९२ (कार्तिक शुक्ला १३, वि.सं. २०४९ को) उन्हें आचार्य पद से विभूषित कर अपने भाग्य को सजाया था । इस

प्रकार साधना-पथ पर उत्तरोत्तर विकास की ओर अग्रसर मुनि विराग सागर जी ने अपने ज्ञान, उर्जा और साधना के द्वारा आत्म कल्याण और लोक कल्याण के जिन शीर्ष प्रतिमाओं को स्थापित किया यह असाधारण ही माना जायेगा।

वर्षायोग के अविस्मरणीय क्षण-संयम काल के दौरान आपने संपूर्ण भारत वर्ष में भ्रमण कर प्रभावना करते हुए धर्म की ध्वजा को फहराया तथा इस दौरान जहाँ-जहाँ भी आपका चातुर्मासिक प्रवास रहा, वहाँ आपके सम्मोहक व्यक्तित्व से जैन जैनेत्तरों पर ऐसी गहरी छाप पड़ी कि नास्तिक भी आस्तिक हो गये। प.पू. गुरुवर के वृहद प्रभावना के चातुर्मास (१९८०-२००९ तक क्रमशः दुर्ग (म.प्र. १९८०), नागपुर (महाराष्ट्र) (१९८१), कारंजा (लाड) (महा. १९८२ व ८३), भावनगर (गुज. १९८४), पांचवा (राज. १९८५), निमाज (राज. १९८६), जयपुर (राज. १९८७) भिण्ड (म.प्र. १९८८ व ८९), टीकमगढ़ (म.प्र. १९९०) श्रेयांसगिरि (म.प्र. १९९१), द्रोणगिरि (म.प्र. १९९२) श्रेयांसगिरि (म.प्र. १९९३) बीना (म.प्र. १९९४), ललितपुर (उ.प्र. १९९५) जबलपुर (म.प्र.१९९६) भिण्ड (म.प्र. १९९७, ८८ व ९९), सम्मेदशिखर जी (झारखण्ड २०००) गया (बिहार २००१), श्रेयांसगिरि (म.प्र. २००२) भिलाई (छ.गढ़ २००३) कारंजा (लाड) (महा. २००४), मूडबिद्री (कर्नाटक २००५), मेलचित्तामूर (तमिलनाडू २००६), उदगाँव (महा. २००७), बोरीवली (मुम्बई-महा-२००८) गाँधीनगर (गुज. २००९)में सम्पन्न हुए।

संयमी सृजक :- पूज्य गुरुओं के प्रति विनय भाव तथा शिष्यों के प्रति वात्सल्य एवं करुणा भाव तथा समाज के सही मार्गदर्शक एवं देव-शास्त्र-गुरु के प्रति परमागाढ़ श्रद्धा को देख अनेक भक्तों ने आपको अपना गुरु चयन कर आपका शिष्यत्व धारण कर अपने जीवन को मोक्षमार्ग के प्रति समर्पित किया व आपके साथ चलने को तैयार हो गए, आपने संयम काल के ३० वर्षों में भारत के १० प्रान्तों की लगभग ४०,००० कि.मी. पैदल यात्रा कर अनेकों सिद्धक्षेत्रों, अतिशय क्षेत्रों एवं नगरों में आध्यात्मिक साधना कर अनेकों भव्यों के दीक्षाएँ दी हैं

जिसमें अतिशय क्षेत्र बरासों (भिण्ड) की १३ मुनि दीक्षाएँ, ललितपुर की २१ दीक्षाएँ तथा श्रवणबेलगोला की २५ दीक्षाओं ने जन मानस पर अपनी अमिट छाप छोड़ी है और जिससे जैन-जैनेत्तरों में महत्ती प्रभावना हुई। यही कारण है कि आप एक विशाल एवं श्रेष्ठ वटवृक्ष की तरह है जिसकी छत्रछाया में ७ आचार्य, ४७ मुनि, ४१ आर्यिका, ३ ऐलक, १४ क्षुल्लक, ६, क्षुल्लिकाएँ एवं अभी आपके निर्देशन में लगभग १५० से भी अधिक ऐसे भी विनेय साधक है जो अंतेवासिन के रूप में अपनी साधना में संलग्न है तथा आपके कुशल निर्यापकत्व में अनेक साधुओं एवं साध्वियों ने समाधि कर अपने जीवन को सार्थक किया है।

अनुपम अनुशासन एवं चारित्र साधक- चारित्र संवर्धक अनुशासन के पथानुगामी गुरुदेव आप मात्र शिष्यों को दीक्षा ही नहीं देते किन्तु उन्हें शिक्षा दे अनुशासन में भी रहना सिखाते है। जो शिष्य अनुशासनवान होते है उन्हें सतत् संस्कारित कर ऊँचा उठाते हैं। अपने शिष्यों में आध्यात्मिक संत युवा आचार्य श्री विशुद्ध सागर जी, आचार्य विशद सागर जी, आचार्य श्री विभव सागर, आचार्य श्री विमर्श सागर, आचार्य श्री विहर्ष सागर जी, आचार्यश्री विनिश्चय सागरजी तथा प्रवचन पटु आचार्य श्री विमद सागर जी आदि को तो आपने २००५ कुंथुगिरि से ही आचार्य पद की घोषणाएं कर दी थी, किन्तु धन्य है ऐसे शिष्यों को, कि उन्होंने पद की होड़ नहीं की। अपितु उक्त महाराजों में से अभी ३ मुनिराजों को मुनि श्री विशुद्ध सागर, मुनि श्री विभव सागर, मुनि श्री विमदसागर जी को पू. गुरुदेव ने ही अपने हाथों से उन्हें आचार्य पद के योग्य शिक्षा एवं प्रायश्चित ग्रंथ पढ़ाने के पश्चात औरंगाबाद में ३१ मार्च २००७ को आचार्य पद से विभूषित कर अपने हृदय की उदारता का साकार दर्शन दिया।

अनुशासक वही हो सकता है जो प्रथम स्वयं ही अनुशासन के सांचे में ढला हो, वे अनुशासन में मात्र ढले ही नहीं, किन्तु समग्र शिष्यों को भी अनुशासन में ढाला है यद्यपि अनुशासन विहीन ईर्ष्यालु कुछ शिष्यों ने अपना ग्रुप बना दैविक झूठे चमत्कारों की ख्याति अर्जन हेतु अनुचित प्रयत्न किये किन्तु आचार्यश्री ने उन्हें प्रथम समझाया जब वे

नहीं माने तो उन्हें संघ से बहिष्कृत कर दिया जिससे उन लोगों ने समय-समय पर आप पर छींटा कशी भी की, किन्तु आप जरा भी विचलित नहीं हुए। सूर्य की भाँति प्रकाशमान ही होते रहे हैं तथा अपने अनुशासन में किंचित् भी ढील नहीं दी और न किसी परिस्थिति के सन्मुख घुटने टेके हैं। यहीं कारण हैं उनमें से कतिपय लोगों ने क्षमायाचना कर प्रायश्चित लिया। यही देख स्वस्ति श्री भट्टारक चारुकीर्ति जी श्रवणबेलगोला के मुख से शब्द प्रस्फुरित हुए कि "आचार्य विराग सागर जी एवं उनका संघ चलती-फिरती युनिवर्सिटी है।"

अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी-वैराग्य को दृढ़ करने एवं संयम साधना को निर्दोष बनाने तथा आगमानुकूल चर्या बनाने के लिए, समय का सदुपयोग, धर्म ध्यान की वृद्धि एवं केवलज्ञान की उत्पत्ति में कारणभूत अहर्निश आचार्य प्रणीत शास्त्रों के स्वाध्याय में आप निमग्न रहते हैं तथा अपने साधु समूह को भी निरंतर स्वाध्याय के महत्व को बताकर उन्हें अध्ययन के लिए प्रोत्साहित एवं प्रेरित करते रहते हैं, यही कारण है कि आपने श्री षटखण्डागम धवला जी की ५ वर्षों में १६ वाचनायें बुंदेलखण्ड में मूर्धन्य विद्वानों की उपस्थिति में निर्विघ्न पूर्ण की, साथ ही कषायपाहुड जय धवल ग्रन्थ का वाचन अहमदाबाद, उस्मानपुरा में सानंद सम्पन्न हुआ। साथ में अनेक स्थानों में सम्यग्ज्ञान शिक्षण शिविर व विद्वत गोष्ठि का सफल आयोजन किया तथा आपने अपने शिष्यों को महापुराण, पद्मपुराण, हरिवंशपुराण, अष्टसहस्त्री, त्रिलोकसार, तिलोपण्णति, गोम्मटसार, प्रवचनसार, समयसार, नियमसार, पंचास्तिकाय, मूलाचार, आचारसार जैसे महान ग्रंथों का अध्ययन कराया, जिससे स्पष्ट है कि आप चारों अनुयोगों के प्रकाण्ड विद्वान हैं।

श्रुतसेवा-ज्ञान के प्रति अभिरुचि होने से आप निरंतर श्रुत सेवा में तल्लीन रहते हैं और आगम के चिंतन एवं मनन के द्वारा तत्व की गहराई में उतरकर उसके गूढ़ रहस्यों का उद्घाटन कर आगम की पुष्टि करते हुए लोगों की भ्रांति को दूरकर उनके सम्यग्दर्शन को निर्मल करते हैं। इस प्रकार आपने आगम के आधार से अपने साधना काल में

अनेक कृतियों का सृजन कर माँ जिनवाणी के भण्डार को समृद्ध कर एवं पर के मिथ्यांधकार को दूर कर ज्ञान का प्रकाश किया है, जिसमें मुख्य कृतियाँ सम्यग्दर्शन, व्यसन विचार, जिनेन्द्र दर्शन, जिनेन्द्र पूजन, शुद्धोपयोग, तीर्थंकर दिव्य दर्शन, सल्लेखना से समाधि, आगम चक्खू साहू, परम दिगम्बर जैन मुनि, सर्वोदयी दिगम्बर जैन धर्म आदि हैं। जिसमें शुद्धोपयोग कृति, जिस पर लगभग १५० विद्वानों ने समीक्षा कर उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है क्योंकि यह कृति अनेक मिथ्या विकल्पों का निसर्ग करती है। साहित्य सृजन की इस श्रृंखला में प.पू. कुंदकुंदाचार्य स्वामी द्वारा रचित वारसाणु वेक्खा नामक ग्रंथ पर आपके द्वारा लिखी गई संस्कृत "सर्वोदयी टीका", जिन आगम के लिए एक ऐतिहासिक उपलब्धि है क्योंकि प.पू. आचार्य कुंदकुंदस्वामी के इस ग्रंथ पर संस्कृत टीका अभी तक अनुपलब्ध थी, श्रुत सेवा में आपका यह महान अवदान युगांत तक सदैव स्मरण किया जायेगा। इस तरह सर्जना के क्षेत्र में लगभग ५० पुस्तकों के द्वारा सरस्वती के भण्डार को भरने का आपने जो भागीरथ कार्य किया है वह अनुपम है इनमें भारतीय साहित्य, धर्म, दर्शन, ज्ञान और चारित्र के ऐसे बहुविध रुप देखने को मिलते हैं जिन्हें देखकर आचार्यश्री की बहुमुखी प्रतिभा का सहज ही आकलन किया जा सकता है।

आपकी सत् प्रेरणा से श्री सम्यग्ज्ञान दिगम्बर जैन विराग विद्यापीठ, भिण्ड, अनेकों धार्मिक एवं लौकिक (शिशु, प्राईमरी, मिडिल एवं हाईस्कूलीय) शिक्षायें प्रदान कर रही हैं। इसी प्रकार पन्ना में श्री सम्यग्ज्ञान दिग. जैन स्कूल, ब्रजपुर में श्री सम्यग्ज्ञान दिग. जैन विद्यालय भी अपनी मिडिल तक की शिक्षा प्रदान कर रहे हैं। बीना में आचार्य विराग सागर जी बी.एड. कॉलेज ने अल्प समय में बहुत बड़ी सफलता हासिल की है।

धर्म प्रचार-प्रसार के क्षेत्र में विराग वाणी मासिक पत्रिका निरन्तर हर स्तर के आलेखों से भरपूर रहती हुई जन मानस को आकर्षित करती है।

बहु आयामी विशेषताओं से समन्वित पूज्य आचार्य श्री के दर्शन इस रुप में भी करें-

१. जो टी.वी, मोबाइल, तथा लेफ्टॉप का तथा पंखा, कूलर एवं ए.सी. का उपयोग नहीं करते हैं ।
२. जो बाथरूम में लघुशंका एवं शौचालय में दीर्घ शंका (शौच) नहीं जाते हैं ।
३. जो करीब २३ वर्षों से नाखून अपने हाथ से निकालते हैं (ब्लेड, नैलकटर या कैंची से नहीं निकालते हैं)
४. जिन्हें कभी थूकते हुए नहीं देखा गया हैं ।
५. जो आहार में द्विदल नहीं लेते है ।
६. दही, तेल का जिनका आजीवन त्याग है ।
७. सभी प्रकार की हरी पत्तियाँ एवं मटर के अलावा सभी हरी फलियों का जिनका आजीवन त्याग है ।
८. जो प्रत्येक अष्टमी व चतुर्दशी को नीरस करते हैं ।
९. जो किसी भी महिला से एकान्त में अकेले चर्चा नहीं करते हैं ।
१०. जिनका कोई प्रोजेक्ट नहीं है तथा चंदा चिट्ठा से दूर रहते हैं ।
११. जिनके संघ में मोटर, कार, जीप तथा अनावश्यक परिग्रह नहीं है ।
१२. जिनके संघ में कोई संघ संचालिका नहीं है ।
१३. जो तंत्र-मंत्र नहीं करते तथा किसी की कुण्डली एवं हाथ आदि नहीं देखते हैं ।
१४. जो औषध (दवाईयों) को न रखते हैं, न बताते हैं ।
१५. जिनमें पंथ-परंपरा का कोई दुराग्रह नहीं है ।
१६. जो गरीब और अमीर को समान रूप से देखते हैं ।
१७. जो सदैव ज्ञान-ध्यान और तप में लीन रहते हैं ।
१८. जो किसी की बुराई या निंदा न सुनते हैं और न करते हैं ।
१९. बड़े-बड़े कष्टों में जिनकी सहिष्णुता देखी गई है ।
२०. बड़े-बड़े उपसर्गों में भी जिनकी बड़ी धैर्य व समता के दर्शन हुए ।
२१. जिन्होंने अभी तक विभिन्न मंत्रों की लगभग तीस लाख से भी अधिक जाप की है ।

२२. जो विहार आदि के समय में भी प्रायः जाप करते रहते हैं ।
२३. जो श्वासोच्छ्वास से कायोत्सर्ग करते हैं ।
२४. जो मुनिचर्या के २८ कृतिकर्म प्रतिदिन करते हैं ।
२५. जो अपने संघस्थ साधुओं को आगम, अध्यात्म, सिद्धांत, व्याकरण, न्याय आदि की शिक्षा के साथ नैतिक शिक्षा भी देते हैं ।
२६. जो संघस्थ आबाल-वृद्धों का पूरा ध्यान रखते हैं ।
२७. जिन्होंने अभी तक कर्मदहन, णमोकार पैंतीसी, सर्वदोष परिहार, प्रत्याख्यान, पंचविंशतिका, वचनगुप्ति, नीति सागर, षडरसी, भक्तामर, समवशरण व्रत कर लिये हैं तथा चारित्र शुद्धि व्रत कर रहे हैं ।
२८. जो प्रत्येक अष्टमी-चतुर्दशी को प्रायः २२ घंटे का मौन रखते हैं । तथा प्रतिदिन जो आवश्यकों के अलावा भी एक घंटे का मौन रखते हैं ।
२९. विशाल संघ के संचालन की जिनकी अपूर्व ही क्षमता है ।
३०. जिनका १० अन्न एवं १५ हरी का आजीवन नियम है ।

प्रतिभा सम्पन्न गणाचार्य - १६-१७ अगस्त २००३ जब उपसर्ग के बादल आप पर मंडराये, तब आपकी एक आसन से ३६ घंटे की लगातार निराहार योग ध्यान साधना, अथाह समता, मेरुवत् संकल्प शक्ति से प्रभावित होकर छत्तीसगढ़ (भिलाई, दुर्ग, वैशाली आदि अनेक स्थानों) की समाज ने आपको **'उपसर्ग विजेता'** की उपाधि से सम्मानित कर अपने आपको गौरवान्वित किया था। २००४ के चातुर्मास काल में आपकी निर्मल साधना से प्रभावित होकर कारंजा समाज ने आपको **चारित्र शिरोमणि** की उपाधि से अलंकृत कर अपने जीवन को कृतार्थ किया ।

आपने अपनी कुशलता के द्वारा अल्पायु में ११८ पथिकों को मोक्ष की राह दिखाकर उनका मोक्षमार्ग प्रशस्त किया है इसलिए परम पूज्य गणाधिपति गणधराचार्य श्री कुंथुसागरजी महाराज ने २००५ में

१५ आचार्यों एवं २०० साधुओं की उपस्थिति में जनसमूह के समक्ष आपको **'श्रमण रत्नाकर'** की उपाधि से सुशोभित किया था। आपने जो धवला ग्रंथ की १६ पुस्तकों की वाचना लगभग १५० विद्वानों की उपस्थिति में ५ वर्षों में पूर्ण की है इससे प्रभावित होकर २००५ में मूडबिद्री के भट्टारक श्री चारुकीर्ति जी एवं वहाँ की समाज ने आपको **'सिद्धांतरत्न'** की उपाधि प्रदान कर अपना अहोभाग्य समझा था। आपने अपने संयमी जीवन में अनेक आध्यात्मिक ग्रंथों का रसास्वादन किया है, कराया है इसलिए आप उपसर्गों से गुजरकर भी काँटो में गुलाब की तरह विकसित हुए अतः आपकी अध्यात्म साधना से प्रभावित होकर धर्माधिकारी डॉ. वीरेन्द्र कुमार हेगड़े जी ने २००५ धर्मस्थल में **'अध्यात्म योगी'** की उपाधि से विभूषित कर अपना गौरव बढ़ाया है। २००६ मेलचित्तामूर में स्वस्ति श्री लक्ष्मीसेन भट्टारकजी ने **'समता मूर्ति'** की उपाधि से, २००७ औरंगाबाद में त्रय आचार्य पद प्रतिष्ठा के अवसर पर परम पूज्य आचार्य श्री विशुद्ध सागर जी महाराज, परम पूज्य आचार्य श्री विभव सागर जी महाराज, परम पूज्य आचार्यश्री विमद सागरजी एवं वहाँ की समाज ने लगभग २५ संघों के नायक होने से आपको **'गणाचार्य'** तथा २००७ शिरडशाहपुर में हुए श्री मल्लिनाथ श्री मज्जिनेन्द्र पंचकल्याणक महोत्सव के पावन सुअवसर पर परम पूज्य आचार्य विभव सागर जी एवं सकल दिगम्बर जैन समाज ने **'वात्सल्य रत्नाकर'** की उपाधि से विभूषित कर अपने जीवन में गुरु महिमा का प्रकटीकरण कर अपने जीवन को सौभाग्यशाली बनाया। आपने अपने विगत २७ वर्षों के साधनाकाल में राष्ट्र के लगभग संपूर्ण प्रांतों में भ्रमण कर अहिंसा व शाकाहार का संदेश जन जन तक पहुँचाया है अतः सन् २००७ में आपके मुनि दीक्षा के २५ वें वर्ष में प्रवेश करने पर कुंजवन उदगाँव में **"राष्ट्रीय रजत मुनि दीक्षा महोत्सव"** के अवसर पर कुंजवन ट्रस्ट समिति उदगाँव, राष्ट्रीय रजत मुनि दीक्षा महोत्सव समिति, राष्ट्रीय विराग युवा व महिला मंच, भिंड तथा सांगली एवं विधायक कपूरचंद जी घुवारा ने आपको **'राष्ट्रसंत'** की उपाधि प्रदान की। इसी अवसर पर प.पू. निमितज्ञानी आचार्य श्री

विमल सागर जी महाराज की कीर्ति को देश-प्रदेशों में प्रचार करने से प.पू.तपस्वी सम्राट आचार्य श्री सन्मति सागर जी महाराज ने आपको **'विमल कीर्ति'** की उपाधि दे असीम वात्सल्य का अद्वितीय उपहार दिया। आपकी निर्मल छवि को देख सकल दिगम्बर जैन समाज व विमर्श सेवा समिति शिवपुरी ने **'आचार्य गौरव'** तथा सिद्धांत शास्त्रों के अभीक्ष्ण ज्ञान से ओत प्रोत होने से पंडित धनपाल हबले सहित उपस्थित विद्वानों ने आपको **'सिद्धांत चक्रवर्ती'** की उपाधि से विभूषित किया। वर्तमान में न्याय एवं दर्शन की क्षीण होती विद्या का आपने स्वयं अध्ययन किया एवं विशाल शिष्य समूह को कराया इसलिए **'राष्ट्रीय रजत मुनि दीक्षा वर्ष समापन समारोह'** को भव्य आयोजना के अवसर पर श्री १००८ पार्श्वनाथ स्वामी देहरासर ट्रस्ट गुलालवाड़ी, मुंबई सहित भट्टारक लक्ष्मीसेन स्वामी जी कोल्हापुर, भट्टारक लक्ष्मीसेन स्वामी जी मेलचित्तामूर, प्रतिष्ठाचार्य प्रदीप जैन, 'मधुर,' प्रतिष्ठाचार्य कमल शास्त्री कलकत्ता तथा पंडित भरत काला आदि ने प.पू. गुरुदेव को **'न्याय भास्कर'** की उपाधि प्रदान की। तथा इसी अवसर पर मुनि श्री विवर्जन सागर जी महाराज की भावना के अनुरूप सकल दिगम्बर जैन समाज आदम्पाकम (चेन्नई) तथा पंडित सिहचंद्र जी शास्त्री ने आपको **'श्रमण सूरि'** की उपाधि से विभूषित किया। इसी श्रृंखला में भगवान नेमीनाथ एवं ७२ करोड़ ७०० मुनिराजों की निर्वाण भूमि श्री गिरनारजी सिद्धक्षेत्र पर आयोजित सप्तमुनि दीक्षा के पावन अवसर पर गिरनार गौरव प.पू. आचार्य श्री निर्मल सागर जी महाराज, **"आचार्य रत्न"** की उपाधि देकर असीम वात्सल्य का परिचय दिया।

इसी प्रकार आपके लिए समय-समय पर विभिन्न स्थानों पर विद्वानों ने उपाधियाँ दी, यथा सन् १९८८ बरासों में समाज ने **'क्रांतिकारी संत,'** १९९४ बीना की समाज ने **'बुंदेलखण्ड के प्रथमाचार्य,'** १९९५ जबलपुर में साहित्य मनीषी श्री सुरेश 'सरल' जी ने **'निस्पृही संत,'**१९९९ भिण्ड में पण्डित सुमतिचंद्र जी शास्त्री ने **'अध्यात्म सिद्धांत वारिधि,'**२००१ गया में श्री पण्डित लक्ष्मण प्रसाद जी ने **'न्याय मार्तण्ड,'**२००२ श्रेयांसगिरि में **'तीर्थ उद्धारक एवं संत शिरोमणी,'**

२००४ राजिम में पण्डित श्री ऋषभ कुमार जी ने **'समाधि सम्राट,'**२००५शमनेवाड़ी में परम पूज्य आचार्य गुणधरनंदी जी ने **'ज्ञान दिवाकर'** की उपाधि से विभूषित कर अपने आपको गौरवान्वित किया।

कृतित्व एवं व्यक्तित्व की गौरव गाथा-आपके ऊर्जा पूर्ण महामानवीय जीवन पर श्री साहित्य मनीषी श्री सुरेश 'सरल' जी ने 'निस्पृही संत' कृति तथा प्राकृत मनीषी प्रो. उदयचंदजी उदयपुर ने साहित्य विद्या से परिपूर्ण प्राकृत भाषा में 'विराग सेतु' महाकाव्य कृति लिख्र जन मानस को आचार्य श्री के असीम व्यक्तित्व से परिचय कराया है एवं डॉ.लोकेश ख्रे ने आपके असीम कृतित्व एवं व्यक्तित्व पर पी.एच.डी. कर डॉक्टरेट की उपाधी प्राप्त की है।

अहिंसा और मानव धर्म के संदेश वाहक-आज सर्वत्र हिंसा का साम्राज्य है। यह हिंसा किसी जीव की नहीं वरन् उन मूल्यों की है जो हमारी संस्कृति के प्रबल आधार है। सांस्कृतिक मूल्यों का आज जिस तरह से ह्रास हो रहा है वह अत्यन्त दु:ख्रदायी है। मानवीय सम्बन्धों में जिस तीव्रता के साथ बेचारगी का बोलबाला बढ़ रहा है उससे आत्मीयता धीरे-धीरे लुप्त होती जा रही है। संवेदनशून्य मानव आज जिस मुकाम पर ख्रड़ा है वह एकदम हताश, निराश और विवश है, ऐसे नैराश्य के वातावरण में आचार्य श्री की वाणी के द्वारा जिन अमृत वचनों की वर्षा जगह-जगह पर हो रही है वह संतप्त मानवों के लिए संजीवनी की तरह जीवनदायिनी का काम कर रही है। जीवन का अर्थ क्या है ? इसे अर्थवान बनाने के लिए किन-किन चीजों की आवश्यता होती है ? इतिहास के द्वारा स्मरण पाना कैसे संभव है ? आदि जीवन के उन शाश्वत सूत्रों का संदेश हमें आचार्य श्री के साहित्य में देख्रने को मिलता है। व्यक्ति को आज हम इस बात का बोध होना चाहिए कि सबसे बड़ा धर्म मानव धर्म है। इसकी रक्षा के लिए व्यक्ति को सतत सचेत रहना चाहिए । आचार्य श्री ने मानव धर्म और महावीर के प्रमुख्र सिद्धांत अहिंसा का जन जन तक पहुँचाने का जो स्तुत्य कार्य किया है उसे इतिहास कभी विस्मृत नहीं कर पायेगा।

संपादकीय

जैनागम इतना गहन और विस्तृत है कि इसके विषय में कहा जाता है - यदि व्यक्ति जीवन भर मात्र इसके पन्ने ही पलटने का प्रयास करे तो मुश्किल है कि, ऐसा भी कर पाये। फिर इसके संपूर्ण अध्ययन की बात तो दूर रही। न हमारे पास इतना समय है कि हम सारे शास्त्रों को पढ़ पायें समय सीमित किन्तु ज्ञान असीमित है फिर ज्ञान पिपासु व्यक्ति क्या करें।

प.पू. गुरुवर कहा करते हैं - शास्त्रों का सार ग्रहण करें, भार नहीं। क्योंकि सार ग्रहण करने से कल्याण होता है - भार ग्रहण करने से नहीं।

हमारी प्राचीन संस्कृति में नैतिकता को विशेष महत्व दिया गया है। जब गुरुकुल में विद्या अध्ययन हेतु विद्यार्थी का प्रवेश होता है तब उसे शास्त्रों की शिक्षा के साथ - साथ व्यवहारिक - नैतिक शिक्षा दी जाती थी। हमारे यहाँ किताबी ज्ञान को कोरा ज्ञान कहा गया है। क्योंकि किताब - आचरण के सूत्र देती है इसके धारण करने का कार्य हमारा है।

युधिष्ठिर का उदाहरण आता है। जब वे विद्यार्थी जीवन में थे तब उनके गुरु ने छोटा सा सूत्र याद करने दिया था - **सत्यं वद, युक्तं चर** इतना सा सूत्र भी वे जल्दी याद नहीं कर सके, क्यों। उनका कहना था कि कंठस्थ तो कर लिया पर अभी हृदयस्थ नहीं हुआ। अत: मुझे पाठ याद नहीं। मैं अभी सत्य बोलना, मुक्ति पूर्वक आचरण करना सीख्र रहा हूँ। गुरु उनके इस उत्तर से प्रसन्न हुए। आगे चलकर वे ही धर्मराज युधिष्ठिर बने ऐसे महापुरुष हमारी संस्कृति ने विश्व को दिये हैं तो उसका श्रेय जाता है - नैतिक

शिक्षा, सदाचार की शिक्षा को। जो विश्व में और कहीं नहीं दी जाती है।

प.पू. गुरुवर भी प्राचीन संस्कृति, पूर्वाचार्यों के अनुसरण कर्ता हैं। उनका कहना है - नैतिक शिक्षा की जड़ मजबूत होंगी तभी ज्ञान रुपी वृक्ष मानवता रुपी वृक्ष, राष्ट्र रुपी वृक्ष मजबूत रह सकेगा।

हम अल्पज्ञ हैं और प.पू. गुरुवर की कृपा प्राप्त कर सके ये हमारा सौभाग्य है। हम शास्त्रों को समझ पाने में असमर्थ हैं। ऐसी परिस्थिति में गुरुवर हमारे लिये एक महान संबल की तरह हैं। जब मांझी कुशल होता है तो नाव भी डूबती नहीं। शास्त्र रुपी नौका को पार कराने वाले गुरुवर हैं। उनकी अमृतमयी वाणी का हमने रसास्वादन किया। उनमें बहुत सारे आत्महित के, नैतिकता के सूत्र पाये, जिन्हें चुन - चुनकर यहाँ प्रयुक्त किया - कोटेशन के रुप में। ये कोटेशन हमारी जिंदगी में बड़े महत्वशाली हैं। ये जल्दी याद होते हैं तथा याद ही नहीं जीवन में उतर जाते हैं। जीवन को सुखी बनाने का ये उत्तम और सरल तरीका है। गुरुदेव ने शास्त्रों का मंथन किया और जो भी प्राप्त हुआ अर्थात् जो चिंतन, जागरण के सूत्र पाये वो करुणा कर हमें दिये।

इन सूत्रों में से कुछ को देखें -

- संसार के अंधकार को नष्ट करने वाला एवं समस्त अर्थों को प्रकाशित करने वाला यदि कोई है तो वह जिनसूर्य है।
- धर्म शास्त्र यदि विस्मृत हो जाए तो फिर से याद किये जा सकते हैं। परन्तु सदाचार स्खलित हुआ तो सदा के लिये अपने स्थान से भ्रष्ट हो जाता है।
- मनुष्य समाज में सदाचारी पुरुषों का सम्मान होता है।
- सत्य बोलना सत्य पाने का मार्ग है।

इस तरह ऐसा लगता है प.पू. गुरुवर ने स्वयं अनुभव कर के अमृत वाक्य दिये हैं। गुरु हित मित प्रिय वचन बोलते हैं। कम शब्दों में ही महान अर्थ समेटे हुए सूत्र वास्तव में हमारे कल्याणकारी हैं।

हम कृतज्ञ हैं अपने प.पू. गुरुवर के प्रति। गुरुवर ने अनेक प्रकार से माँ जिनवाणी की सेवा की हैं। उनकी अमूल्य कृति शुद्धोपयोग, आगम चक्खू साहू देखें। उनमें उनकी बुद्धि की सूक्ष्मता को देखा जा सकता है। वे शास्त्रों की सेवा करते हैं, जिनागम की सेवा करते हैं। हम क्या कर सकते हैं। ऐसा सोचकर ये छोटा सा हमारा प्रयास आपके समक्ष है। हमारा वैसे कुछ नहीं सब देन गुरुवर की है। उनकी प्रेरणा, मार्गदर्शन के बिना कुछ हो ही नहीं सकता था। उनका ही, उनके लिए समर्पित है। गुरुवाणी को हम भव्य जीवों तक पहुँचाने का प्रयास करेंगे प.पू. गुरुवर के चरणों में शत् - शत् बार -

नमोस्तु - नमोस्तु - नमोस्तु

आर्यिका विशिष्ट श्री माताजी

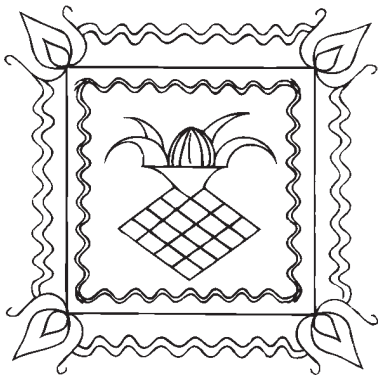

भक्ति प्रसून

"स्वाध्यायः परमं तपः" स्वाध्याय परम तप है । स्वाध्याय अर्थात् ऐसी पुस्तकों का पठन, चिंतन - मनन जो हमारे जीवन का स्वयं का अध्याय प्रारंभ करवा दें । स्वाध्याय से लाभ क्या है ? तो सबसे बड़ा लाभ तो ये कि हमारा मन तो एकाग्र होता है। जब तक स्वाध्याय में संलग्न होते हैं तब तक मन कहीं बाहर नहीं भटक पाता। इसी प्रकार तत्वार्थ सूत्र में कहा गया - **"तपसा निर्जरा" चै** तप से निर्जरा होती है और यह स्वाध्याय तप है अतः कर्मों की निर्जरा का प्रशस्त माध्यम है।

शास्त्रों का चिंतन, मनन, पठन व्यक्ति की सुसुप्त चेतना को जगा देता है। शास्त्रों का पढ़ना, व्यक्तित्व निर्माण की साधना है। सद्शास्त्रों के अभ्यास से अच्छी - अच्छी बातें, सदाचार, नैतिक शिक्षा मिलती है। कितने ही महापुरुषों के उदाहरण हैं, जिन्हें शास्त्रों के माध्यम से प्रेरणा मिली, उनका व्यक्तित्व निर्माण हुआ और इतना ही नहीं निर्माण से निर्वाण तक की यात्रा उन्होंने, शास्त्रों के माध्यम से उत्पन्न उत्कृष्ट चिंतन के माध्यम से की।

लेकिन खाली शास्त्र लेकर बैठने से हमारी निर्माण से निर्वाण तक की यात्रा पूरी नहीं होगी। शास्त्रों का मर्म समझने वाले शास्त्र रुपी समुद्र में अवगाहन करने वाले आचर्यों के बिना, शास्त्र भी हमारी बुद्धि में प्रवेश तक नहीं कर पाते।

ऐसे आचार्यश्री के पावन चरणों में त्रय भक्ति सहित बारंबार नमोस्तु करती हूँ कि जिन्होंने करुणा कर भव्य जीवों को अपनी वाणी का, जिनवाणी का अमृतपान कराया है। कैसे होते हैं वे आचार्य ? सिंहवृत्ति वाले परम प्रतापी, सागर के समान गंभीर होते हैं। उनके वचन हित- मित -प्रिय होते हैं।

पूवाचार्यों की परंपरा में ही एक महान आचार्य प.पू. उपसर्ग विजेता, वात्सल्य रत्नाकर गणाचार्य श्री विराग सागर जी महाराज, हमारे परम उपकारी गुरुदेव हैं। जिन्होंने अपनी सहज - अमृतवाणी के माध्यम से उपदेश दे हम पर परम करुणा दिखाई है। गुरुदेव के उपदेश से ऐसा कौन सा कार्य है जो पूरा नहीं होता ?

अतः उनके उपदेशों को जन - जन तक पहुँचाने का पूज्य विशिष्ट श्री माताजी का उद्देश्य -प्रयास, अनुकरणीय - प्रशंसनीय है। हम उनके इस कार्य से बहुत अनुग्रहीत हैं। आशा है जब शास्त्रों का सार नीति वाक्य (कुटेशन) के रूप में, गुरुवाणी महत्वशाली सूत्रों के रुप में आपके हाथों में पहुँचेगी तब आप उसे सिर पर धरेंगे जीवन में उतारेंगे। यह कृति अवश्य ही आपको लाभान्वित करेगी। ज्ञान में, चिन्तन में विकास करेगी। यह लघु कृति "गागर में सागर" भरने के सदृश महत्वशाली है। माताजी इसी तरह आगे भी जिनवाणी की सेवा, गुरु की सेवा करती रहें। अंत में बारंबार गुरु चरणों में त्रिकाल भक्ति सहित नमोस्तु

आर्यिका वियुक्त श्री माताजी

क्षमा

★ क्षमा गुण सुख को प्रदान करने वाला है।

★ विवेक से क्षमा की उत्पत्ति होती है। जब क्षमा से अन्य गुणों की प्राप्ति होती है तब सारी चिंतायें नष्ट हो जाती हैं।

★ क्षमा को धारण करने वाले मानव का न कोई मित्र है न कोई शत्रु है।

★ जो आत्मीय गुणों को क्षय से रोके उसका नाम है - क्षमा।

★ जो आत्मा को पतन से रोक दे तथा उन्नति की ओर अग्रसर करे, जो आत्मा को पवित्र बना दे वह है - क्षमा।

★ क्षमा मानवता की ओर ले जाने वाली सीढ़ी है।

★ क्षमा जीवन को मोक्ष मार्ग से, मोक्ष सुख से जोड़ने वाली है।

★ अपराधी के अपराध को देखकर भी क्षमा करें तो हमारी क्षमा का उस पर ऐसा प्रभाव पड़ता है कि वह सुधर जाता है।

★ क्षमा माँगना तथा क्षमा करना दोनों का नाम क्षमा है।

★ क्षमा, याचना नहीं प्रार्थना है।

★ जैसे ही कषाय समाप्त होती है, वैसे ही क्षमा की उत्पत्ति होती है।

★ विवेक से क्षमा की उत्पत्ति होती है।

★ क्षमा गुण ही सुख को प्रदान करने वाला है और दुःखों का नाशक है।

★ क्षमा पावनता की ओर ले जाने वाली है।

★ क्षमा एक आत्मा को समस्त आत्माओं से जोड़ती है तथा क्रोध अनेक आत्माओं से तोड़ता है।

★ क्षमा का यदि अंतरंग में समावेश है, तो क्रूर व्यक्ति के हृदय को भी आप जीत सकते हैं।

★ क्रूर व्यक्ति भी आपकी क्षमा से प्रभावित होकर क्षमाशील हो सकता है क्योंकि हर व्यक्ति मानव है, पत्थर नहीं।

★ क्षमा सदैव दूसरों को प्रभावित करती है।

★ हमारे जीवन में भी ऐसी क्षमा हो जिससे हमारी क्षमा को देखकर दूसरे भी क्षमा धारण करें।

★ क्षमा धारण से ही सुख व शांति की प्राप्ति होती है।

★ क्षमा से विकास की भूमिका बनती है।

★ केवल क्षमा करना ही क्षमा का धर्म नहीं है। परस्पर में एक दूसरे को क्षमा मांगना भी क्षमा धर्म है।

★ गल्तियों का त्याग क्षमा है।

★ क्षमा को अंतरंग में संजोया जाता है, न कि बहिरंग में।

★ जब तक आप गल्तियों का त्याग नहीं करेंगे, तब तक आपके जीवन में क्षमा का प्रवेश नहीं होगा।

★ क्षमा वह अमृत है, जो धारण करने वाले को अजर अमर बना देता है।

★ जहाँ क्षमा है वहाँ आनंद के स्त्रोत फूटते है।

★ क्षमाशील का कोई शत्रु नहीं होता।

★ क्षमा वीरों का आभूषण है।

★ क्षमा गुण नहीं आत्मा का स्वभाव है।

★ क्षमा में रहने वाला वैभाविक परिणतियों से प्रभावित नहीं होता।

★ क्षमा का अर्थ है - क्रोध नहीं करना, बैर नहीं रखना।

क्रोध

★ क्रोध का अभाव ही, क्षमा का सद्भाव है।

★ क्रोध विष है तो क्षमा है - अमृत।

★ क्रोध जीवन का हनन करता है, क्षमा उत्थान करती है।

★ क्रोध से इहलोक में क्षति तो होती ही है, पारमार्थिक क्षति भी होती है।

★ क्रोध के कारण पिता - पुत्र का बैर हो जाता है।

★ क्रोध आता है तो आत्मा नहीं दिखती है।

★ क्रोध में व्यक्ति अंधा हो जाता है।

★ क्रोध में व्यक्ति अपना विवेक खो देता है।

★ क्रोध संसार को बढ़ाता है।

★ क्रोध से विनाश होता है, क्षमा से उन्नति होती है।

★ क्रोध के कारण उपस्थित होने पर भी, क्रोध नहीं आना उत्तम क्षमा है।

★ क्रोध नहीं, धैर्य धारण करो।

★ क्रोध से परिणामों में कलुषता उत्पन्न होती है।

★ कलुषता जहाँ तिष्ठति है वहाँ से क्षमा पलायन कर जाती है।

★ क्रोध एक कषाय है जो आत्मा को मलिन कर देती है।

★ क्रोध की भूमिका में विशुद्धि नहीं हो सकती है।

★ क्रोध के समय सुख व शांति नहीं हो सकती है।

★ क्रोध आत्मा के आनंद को नष्ट कर देता है।

★ क्रोध आत्मा को जला देता है। आत्मिक गुणों को ढक देता है।

★ क्रोध की उत्पत्ति से शारीरिक तथा मानसिक शक्ति क्षीण हो

जाती है।

★ क्रोध कैसा भी हो, चाहे कम हो या अधिक, क्रोध तो क्रोध ही है। अग्नि तो अग्नि ही है। चाहे वह चिनगारी हो या मशाल, जलाने का स्वभाव दोनों का है।

★ क्रोध रुपी अग्नि आत्मा की वैभाविक परिणति (कषायों) से उत्पन्न होकर स्वयं को जला देती है।

★ आपका ही क्रोध आपके ऊपर घात करता है।

★ हमारे क्रोध से दूसरे को कष्ट हो अथवा ना भी हो, परन्तु स्वयं को कष्ट होता ही है।

★ यदि दूसरे व्यक्ति के तीव्र पुण्य का उदय है तो आपके क्रोध से उसको किंचित् भी हानि नहीं होगी।

★ क्रोध सद्गुणों को नष्ट कर देता है।

★ क्रोध दूसरे व्यक्ति को जलाये या ना जलाये लेकिन क्रोध करने वाला व्यक्ति तो अवश्य जलता ही है।

★ क्रोध उस बड़वानल के समान है जिसे समुद्र का जल भी शांत नहीं कर सकता अपितु वह क्रोधाग्नि धधकती रहती है।

★ क्रोध द्वारा उत्पन्न पाप कर्मों का बंध अनुमान से अधिक होता है।

★ क्रोधी व्यक्ति का धर्माचरण व्यर्थ है।

★ क्रोध वास्तव में पर पदार्थों के संसर्ग से उत्पन्न होता है।

★ जब विपरीत व्यवहार होता है तब क्रोध की भूमिका बनती है।

★ प्रकट क्रोध, अप्रकट क्रोध की अपेक्षा अधिक हानिकारक है तथा किसी अपेक्षा से अप्रकट क्रोध, प्रकट क्रोध की अपेक्षा अधिक हानिकारक हो सकता है।

★ क्रोध के आवेश में अपना विवेक न खोयें।

★ क्रोध के समय धैर्य धारण करना चाहिए।

★ यदि आप क्रोध को समाप्त नहीं कर सकते हो तो अपनी चिंतन धारा को बदल दो।

★ कदाचित् कोई व्यक्ति गलती कर रहा है फिर भी हमें उस पर क्रोध नहीं करना चाहिए।

★ क्रोध संसार में सागरों वर्षों की स्थिति को बढ़ाकर अनंतकाल तक संसार में भटकाने वाला है।

★ क्रोध के आवेश में होश तथा विवेक समाप्त हो जाता है।

★ क्रोध एक नशा है जिस प्रकार से शराब को पीकर मानव हिताहित के विवेक को नष्ट कर देता है। उसी प्रकार क्रोध रुपी शराब को पीकर मानव हिताहित के विवेक को खो बैठता है।

★ क्रोध की भूमिका में हमें गुण नहीं दिख सकते क्योंकि यह उबलते हुए जल के समान है।

★ वास्तविक गलती मानने पर दूसरों को क्रोध उत्पन्न नहीं होगा।

★ क्रोधी कभी स्वभाव का आश्रय नहीं ले पाता।

★ क्रोधी उन्नति के द्वारों को अवरुद्ध कर देता है।

मार्दव (नम्रता)

★ जिसके पास नम्रता है, उसके पास संपूर्ण शक्तियाँ है।
★ जिसके पास नम्रता, प्रेम तथा वात्सल्य नहीं, उससे बड़ी शक्तियाँ टूट जाती हैं।
★ नम्रता उत्थान का द्वार है।
★ अहंकार व्यक्ति को कठोर बनाता है जबकि नम्रता मुलायम बनाती है।
★ अहंकारी व्यक्ति दुनियाँ को झुकाना चाहता है, स्वयं झुकना नहीं चाहता।
★ अभिमान का विसर्जन ही जीवन में धर्म का सूत्रपात है।
★ अहंकार को मिटा देना ही, बनने का, बढ़ने का मार्ग है।
★ जब तक अहंकार नहीं मरेगा तब तक तुम्हारा जीवन नहीं बन सकता।
★ नम्रता का अर्थ है सिर्फ बाहर से झुकना नहीं, अपितु अंदर बाहर से नम्रभाव आ जाना ही वास्तविक नम्रता है।
★ अहंकार में कभी भी परमात्मा की प्राप्ति संभव नहीं है।
★ पूज्य पुरुषों के प्रति झुकना पड़ेगा, तभी तुम धर्म से भर पाओगे।
★ बाल्टी को झुकाना पड़ेगा, तभी वह जल से भरेगी। बिना झुके नहीं।
★ कोमल परिणाम तथा नम्र भाव का नाम है - मार्दव।
★ जब तक अभिमान है, तब तक तपःचरण या साधना की उपलब्धि संभव नहीं है।
★ अभिमान व्यक्ति के पतन का कारण है।

★ मार्दव आत्मा का स्वभाव है।
★ जहाँ से नम्रता या लचीलापन आ जाता है वहाँ से ही मार्दव धर्म का प्रार्दुभाव होता है।
★ मान एक कषाय है जो आत्मा को गंदा करती है।
★ समर्पण का प्रथम पाठ है झुकना।
★ बाहर के झुकने में अभिमान छुपा रह सकता है।
★ अभिमान भी अपना रुप बदलता रहता है।
★ अंदर से झुके बिना भगवान के दर्शन संभव नहीं है।
★ धर्म के सम्पूर्ण पाठों में प्रथम पाठ झुकना बतलाया है।
★ आज का सर्वाधिक प्राणी मान कषाय में जी रहा है।
★ आज का मानव अहंकार रुपी शिखर पर चढ़कर अपने को दुनियाँ का मालिक समझ रहा है।
★ धन - दौलत के नशे में व्यक्ति, अहंकार की ऊँचाईयों में उड़ान भरने लगता है।
★ दौलत का अहंकार तुम्हें नरक में बिठा देगा।
★ रुप का अहंकार तुम्हें मिट्टी में मिला देगा।
★ अहंकार से रहित ज्ञान आत्मा के कल्याण का हेतु बनता है।
★ नम्रता तुम्हें तार देगी, संसार से पार कर देगी।
★ नम्रता में सुगति है और अहंकार में दुर्गति है।
★ रावण अहंकारी था, इसलिये उसे टूटना पड़ा, परास्त होना पड़ा और उसकी ४ हजार अक्षौहिणी विशाल सेना नष्ट हो गयी।
★ राम के पास स्नेह, वात्सल्य युक्त नम्रता थी। उसी का कारण था कि राम से सभी राजा - व्यक्ति आदि जुड़ते गये तभी तो राम ने अक्षौहिणी सेना को भी नष्ट कर दिया।

★ विजय अहंकार की नहीं नम्रता की होती है ।

★ अहंकार की दीवार को तोड़कर, नम्रता की दीवार तैयार करो ।

★ जन्म से जो अहंकार रुपी नाग पाल रखा है, उसे समाप्त करना होगा तभी तुम्हें मुक्ति रुपी मंजिल प्राप्त होगी ।

★ अहंकार में अशांति पलती है, शांति नहीं ।

★ नम्रता - विनय में शांति एवं आनंद छुपा होता है ।

★ अहंकार रुपी विष को त्याग, नम्रता को धारण करो ।

★ नम्रता में उपलब्धि है और अहंकार में अनुपलब्धि हे ।

★ विनयशील सर्वत्र सम्मान पाता है ।

★ अभिमान में बाह्य प्रदर्शन तो है पर अंतर दर्शन नहीं ।

★ नम्रता आल्हाद को उत्पन्न करती है ।

★ मार्दव धर्म का धारी ही मुक्ति कपाटों को खोल सकता है ।

★ मृदुता, नम्रता, विनय रुप शस्त्र से अभिमान रुप शत्रु नष्ट हो जाता है ।

★ अभिमानी टूटता है तोड़ता है निंदा को प्राप्त होता है जबकि विनयवान जुड़ता है व जोड़ता है, सम्मान को पाता है ।

अहंकार

★ अहंकार निरसन के बिना, साधना की उपलब्धि नहीं है ।

★ अहंकार मानव को अधोगामी बना देता है ।

★ अहंकार व्यक्ति को शैतान बना देता है ।

★ अहंकार व्यक्ति को झुकने नहीं देता है ।

★ अहंकार के समाप्त होते ही व्यक्ति के अंदर लघुता, गंभीरता आ जाती है ।

★ अहंकार के अभाव में विनम्रता का अनुभव होता है ।

★ अहंकार का अंत झुकने की कला से होता है ।

★ अहंकार को नष्ट कर लघुता को धारण करना चाहिए ।

★ अहंकार के निर्सन बिना भक्ति का उद्‌गम संभव नहीं है ।

★ अहंकार व्यक्ति को तोड़ता है, नम्रता व्यक्ति को जोड़ती है ।

★ अहंकार व्यक्ति को पतन की ओर ले जाता है ।

★ अहंकार को जीतने का सबसे अच्छा उपाय है पूज्य पुरुषों की संगति ।

★ अहंकार का विसर्जन ही लघुता का सृजन है ।

★ अहंकार से ही व्यक्ति को कष्ट और आपत्तियाँ घेर लेती है ।

★ अहंकार जीवन का उत्थान नहीं, पतन करता है ।

★ अहंकार मानव को पागल बना देता है ।

★ अहंकार अच्छे संस्कारों को पल्लवित होने नहीं देता ।

★ अहंकार के कारण व्यक्ति अनंत दुःखों को स्वयमेव आमंत्रित कर लेता है ।

★ अहंकार ही भव सागर में गोता लगवाता है ।

★ अहंकार ही तुम्हें एक अपरिमेय सत्ता से वंचित रखता है ।

★ अहंकार विष है जो व्यक्ति का सर्वनाश कर देता है।
★ अहंकार कालकूट जहर है, जिसके सेवन से मृत्यु के अलावा और कुछ नहीं मिलता।
★ अहंकार तुम्हें ही निगल जायेगा, तुम्हें ही एक दिन डस लेगा।
★ अहं के विसर्जन बिना स्व की प्राप्ति संभव नहीं है।
★ अहंकार छोड़े बिना सुख - शांति संभव नहीं है।
★ अहंकार ही विनाश का कारण है।
★ अहंकार के कारण व्यक्ति अनेक पाप कर बैठता है।
★ अहंकार के कारण व्यक्ति परिग्रह का संचय करता है।
★ अहंकार में व्यक्ति दुराचार, अन्याय आदि करता है।
★ अहंकार में विघटन और फूट समायी रहती है।
★ अहंकार का त्याग कर जीवन में मृदुता, लघुता का सौन्दर्यीकरण करो।
★ जीवन में अहं का बीज नहीं, लघुता का बीज चयन करो।
★ अहंकार एक न एक दिन टूट जाता है, समाप्त हो जाता है।
★ अहंकार उस अग्नि के समान है जो बिना ईंधन के प्रज्ज्वलित होता है।
★ अहंकार आत्मा के समस्त गुणों को जलाकर भस्म कर देता है।
★ अहंकार हमें अंधेरे में रखता है। आत्म कल्याण की बातें नहीं सुनने देता है।
★ अभिमानी अपयश को प्राप्त करता है।
★ अभिमानी के सारे गुण नष्ट हो जाते है सारी कलायें समाप्त हो जाती है।

आर्जव

★ साधना का आधार बिन्दु है - आर्जव धर्म।
★ आर्जव का अर्थ है - सरलता, विश्वास, वास्तविकता, ऋजुता, सत्यता, मन - वचन - काय की एकता। ये सभी आर्जव धर्म के पर्यायवाची नाम हैं।
★ मन- वचन- काय की एकता का नाम है - सरलता।
★ सरल व्यक्ति के पास बहुत बड़ी शक्ति हुआ करती है।
★ कपटी - छली व्यक्ति का कोई सहायक नहीं होता है।
★ छल, व्यक्ति के विश्वास को समाप्त कर देता है।
★ मायाचारी करना स्वयं को धोखा देना है।
★ माया, छल- कपट आदि बहुत बड़ा पाप है।
★ एक पाप को छुपाने से सैंकड़ों पाप उत्पन्न हो जाया करते हैं।
★ माया ही माया को जन्म देती है और अनेक संतानें तैयार कर देती है।
★ छल ही प्रीति अर्थात् प्रेम - वात्सल्य को समाप्त कर देता है।
★ टूटे विश्वास को जोड़ना बहुत कठिन होता है।
★ अविश्वासी मनुष्य जीता - जागता मुर्दो की तरह है।
★ मौत से भी बदतर है - अविश्वास।
★ जितना मौत आ जाने से बिगाड़ नहीं होता, उतना विश्वास समाप्त हो जाने से होता है।
★ मायाचारी के साथ की गई धर्म साधना निरर्थक है।

★ समस्त पापों को एक पलड़े पर रखें और छल को दूसरे पलड़े पर, तो छल का पलड़ा भारी होगा ।

★ छल कभी छुपता नहीं है ।

★ बिना आर्जव के धर्म में प्रवेश नहीं हो सकता है ।

★ कोमल परिणाम होना अर्थात् वक्रता से रहित परिणाम का होना आर्जव धर्म है ।

★ अविश्वास के साथ जीना, बहुत खराब कहा गया है ।

★ मर जाना अच्छा है किन्तु विश्वास खोना अच्छा नहीं है ।

★ मायाचारी करने से तिर्यंच गति की प्राप्ति होती है ।

★ सरलता, आर्जव धर्म है, कुटिलता अधर्म है ।

★ कुटिलता छिप नहीं सकती जैसे रुई लपेटी आग छिप नहीं पाती ।

★ धर्म-क्षेत्र में आकर पाप करोगे, छल करोगे तो आपका तीन काल में कल्याण नहीं हो सकता है ।

★ बड़े से बड़ा अपराध क्यों न हो जाये उसे छुपाना नहीं चाहिये ।

★ अपराध को छोटा समझकर छिपा मत लेना क्योंकि छोटी सी चिंगारीभी दावानल जैसा भयंकर रुप धारण करके, सारे वन को जला देती है ।

★ छोटा सा दोष, पाप - छल ही अपराध रुप में अंदर ही अंदर अंकुरित होकर तुम्हें जला देगा, तुम्हें गर्त में डाल देगा ।

★ बीज को छोटा मत समझना, वह भी विशाल वृक्ष का रुप धारण करता है । पाप या गलती कभी छोटी नहीं होती ।

★ वास्तविकता में सरलता हमेशा उभरी है ।

★ सरलता से ही उन्नति एवं विकास होता है ।

★ आर्जव, सरलता का सद्भाव आत्मा में ही होता है और मायाचारी, छल - कपट भी आत्मा में उत्पन्न होते हैं, किन्तु दोनों में अंतर है एक स्वभाव है, दूसरा विभाव ।

★ जिस समय मानव के मन में कुटिलता आती है, उस समय वह अपनी कषायों को तीव्र करता है, पाप प्रकृतियों में आस्था रखने लगता है ।

★ जहाँ वक्रता है वहाँ धर्म नहीं । जहाँ सरलता है वहीं धर्म है ।

★ छली व्यक्ति दूसरों को नहीं अपितु स्वयं के द्वारा स्वयं को छलता है ।

★ मन, वचन और काय की एक रुपता का नाम सरल वृत्ति है ।

★ जहाँ मन में कुछ, वचन में कुछ और कायिक चेष्टा कुछ और होती है वही छल होता है ।

★ छली व्यक्ति का मन चंचल होता है ।

★ माया दुर्भाग्य की जननी है, माया दुर्गति में ले जाने वाली है, माया मनुष्यों को स्त्री पर्याय प्रदान करने वाली है, अतः ज्ञानियों के द्वारा सदा इसका त्याग किया जाता है ।

शौच

★ लोभ सारे दुर्गुणों का खजाना होता है।

★ लोभ दरिद्रों में भी होता है।

★ लोभ का अंतिम परिणाम है - बेमौत मर जाना।

★ लोभी व्यक्ति न तो खाता है और न खिलाता है।

★ लोभी व्यक्ति धन संग्रह करके तिजोरी भरने में संपूर्ण जीवन को निकाल देता है।

★ लोभी व्यक्ति सबसे अधिक अपने दुःखों से दुःखी नहीं है जितना कि दूसरों के सुखों को देखकर दुःखी है।

★ लोभी या कंजूस की सबसे सरल परिभाषा है - जो सबसे पहले दुकान खोलता है, बाद में मंदिर जाता है।

★ जो सर्व प्रथम मंदिर जाकर भगवान के दर्शन करता है, पश्चात् दुकान खोलता है, वह निर्लोभी है।

★ आत्मा को गंदा बनाने वाला है लोभ।

★ शुचिता होना ही शौच धर्म है।

★ आत्मिक पवित्रता की संजीवनी है - उत्तम शौच धर्म।

★ जब तक तुम्हारे अंदर लोभ रहेगा, तब तक शौच धर्म नहीं आ सकता है और न आत्मा पवित्र हो सकती है।

★ लोभ पाप का बाप है।

★ आत्मा को पवित्र बनाने का मार्ग है - शौच धर्म।

★ सिर्फ अमीर ही लोभी नहीं गरीब भी लोभी होता है। क्योंकि गरीब भी अहर्निश धन की चिंता में डूबा रहता है।

★ ऐसा भी नहीं कि जो दान देता है, वह निर्लोभी होगा और जो नहीं देता वह लोभी, बहुत सारे ऐसे भी व्यक्ति हैं जो दान देकर पश्चाताप करते हैं, वे दानी नहीं लोभी है।

★ निर्लोभी वह है जो दान देकर सौभाग्य मानता है।

★ लोभ में व्यक्ति अपने आप को भूल जाता है।

★ लोभ में व्यक्ति भ्रष्ट हो जाता है।

★ आत्मा से लोभ का अभाव ही शौचधर्म है।

★ धन का संरक्षण धर्म से होता है लोभ से नहीं।

★ लोभ समस्त सद्गुणों को नष्ट कर देता है।

★ लोभ, गुणों का विरोधी है।

★ जहाँ सद्गुण होंगे वहाँ लोभ नहीं होगा, जहाँ लोभ होगा उस स्थान पर सद्गुणों को स्थान प्राप्त नहीं हो सकता है।

★ जहाँ लोभ की समाप्ति होगी उस स्थान से सद्गुणों का प्रारंभ होगा।

★ जितना - जितना लोभ नष्ट होगा सद्गुणों का बीज उतना - उतना ही अंकुरित होगा।

★ हम गुणों को प्राप्त करने के लिये लोभ को नष्ट करें तो हम उस शौच धर्म को पा सकते हैं जो गुणों का भंडार है।

★ शौच धर्म के अभाव में लोभी की कभी शुद्धि नहीं हो सकती वह सदा अपवित्र ही रहेगा।

★ जो मानव अत्यंत लोभी है वह वास्तव में पेट को नहीं,पेटी को भरता है।

★ लोभी मनुष्य की अपेक्षा वह पशु अच्छा है जो घास को खाने

के बाद उसकी कामना नहीं करता, उसको एकत्रित करने की भावना नहीं रखता।

★ लोभ से इस जीव की क्या - क्या दुर्गति नहीं होती है ?

★ लोभ के वशीभूत होकर ज्ञानी जन भी आपदाओं का निमंत्रण देते देखे गये है।

★ लोभी मानव धर्म को धारण नहीं कर सकता है।

★ लोभ असीम हैं अत: लोभी व्यक्ति धन संचय के कारण धर्म कार्य में अपने समय को नहीं लगाता हैं।

★ मनुष्य तब तक कीर्ति की इच्छा करता है, तब तक मित्रता को निभाता है, तब तक चारित्र को विस्तृत करता है, तब तक आश्रितजनों का अच्छी तरह पोषण करता है, तब तक उपकार को जानता है, तब तक पाप से शंकित रहता है और तब तक उच्च मान को धारण करता है जब तक कि लोभ के वश को प्राप्त नहीं होता।

★ लोभ से बुद्धि विचलित होती है, लोभ से तृष्णा होती है और तृष्णा से दु:खी मनुष्य इस लोक तथा परलोक में दु:ख को प्राप्त होता है।

★ लोभ से क्रोध होता है, लोभ से काम होता है, लोभ से मोह और नाश होता है लोभ पाप का कारण है।

सत्य

★ सत्य जीवन की झाँकी है।

★ सत्य, साधना, तपस्या के बिना संभव नहीं है।

★ सत्य धर्म को पाना आसान नहीं है।

★ दूसरों को संतापित करने वाले वचनों को छोड़कर स्व - पर हितकारी वचन बोलना ही सत्य धर्म है।

★ सत्य - धर्म असीम एवं अनंत होता है।

★ सत्य धर्म शब्दों से नहीं कहा जा सकता है।

★ सत्य के दर्शन, चर्म नेत्रों से नहीं हो सकते।

★ सत्य संप्रदायों, परंपराओं से अलग है।

★ सत्य को संप्रदायों या परम्पराओं से जोड़ देना मानो उसे संकीर्णताओं से बांध देना है।

★ सत्य, संकीर्ण नहीं, विशाल होता है।

★ सत्य को अपने अनुसार मत चलाओ, अपितु सत्य के अनुसार चलना सीखो।

★ सत्य के अनुसार चलने वाला ही सत्य धर्म को पा सकता है।

★ सत्य ही उन्नति एवं उत्थान की सीढ़ी है।

★ सत्य की हमेशा जीत होती है।

★ असत्य तथा झूँठ बोलने का परिणाम जीवन का विनाश एंव नरक है।

★ असत्य में सिंहासन भी शूली बन जाती है, जबकि सत्य में शूली भी सिंहासन बन जाती है।

★ झूँठ पापों के बाप का भी बाप है।

★ जब तक क्रोध, मान, माया, लोभ ये चार कषायें रहती हैं तब तक सत्य धर्म के दर्शन संभव नहीं।

★ चारों कषायों से परे सत्य धर्म होता है।

★ गृहस्थ के लिये ऐसा सत्य भी नहीं बोलना चाहिए, जिससे कि किसी के प्राण चले जायें या किसी पर विपत्ति आ जाये।

★ सत्य का पावन प्रकाश ही मनुष्य के अंदर सोयी हुई धार्मिकता को जगा सकता है।

★ सत्य का दीपक ही तुम्हारे जीवन को प्रकाशित कर सकता है।

★ कषायों में सत्य का विकास नहीं हो सकता है।

★ सत्य धर्म का व्याख्यान करना संभव नहीं, क्योंकि सत्य धर्म वचनातीत है।

★ सत्य धर्म का स्वभाव है एवं स्वभाव वचन के अगोचर होता है।

★ सत्य वचन का सुनना या कल्पना होना संभव है किन्तु सत्य धर्म पाना कठिन है।

★ सत्य आपके अनुसार नहीं चलेगा, सत्य के अनुसार तुम्हें चलना होगा, तभी सत्य धर्म को प्राप्त कर सकते हो।

★ केवल दर्शन के द्वारा सत्य को प्राप्त किया जा सकता है चर्म चक्षुओं से नहीं।

★ जहाँ सत्य है वहाँ सब कुछ है।

★ जहाँ सत्य नहीं, वहाँ सब कुछ होने पर भी कुछ नहीं है।

★ सत्य सारे विश्व में फैला हुआ है।

★ आज का व्यक्ति सत्य को संकीर्णताओं में बांधना चाहता है।

★ जिनके विचार या दृष्टिकोण संकीर्ण होते हैं, वही सत्य को

संकीर्णताओं या परम्पराओं में बांधते हैं।

★ जो सीमाओं से ऊपर उठकर देखता है, उसे सत्य नजर आने लगता है।

★ जिस दिन तुम सत्य से जुड़ जाओगे, उस दिन तुम सम्प्रदाय से मुक्त हो जाओगे एवं सत्य धर्म को पा लोगे।

★ महात्मा गांधी की मान्यता थी - सत्य ही ईश्वर है।

★ जो लोग कहते हैं - सत्य को मेरे अनुसार चलना पड़ेगा, तो ऐसे लोग कभी भी सत्य को नहीं पा सकते हैं।

★ दिगम्बर संत सत्य के अनुसार चलकर, त्याग - तपस्या के माध्यम से सत्य को पा लेते हैं।

★ हमेशा सत्य बोलें, असत्य नहीं।

★ सत्य के प्रभाव से अग्नि भी नीर बन गई।

★ सत्य तुम्हारे जीवन को प्रकाशित करने वाला दीपक है, जिसके प्रकाश में आत्मा अवलोकित होती है।

★ सत्य को असत्य से आवृत मत करो।

★ सत्य ही जीवन का पवित्र प्याला है।

★ सत्य के बराबर कोई दूसरा तप नहीं, एवं झूँठ के बराबर कोई दूसरा पाप नहीं है।

★ सत्य जीवन का आभूषण है इसलिये अपने जीवन को सत्य से सुसज्जित करो।

★ दिगम्बरी दीक्षा धारण कर तथा साधना में उतरकर, केवलज्ञान प्राप्त करना होगा, तभी सत्य से साक्षात्कार होगा।

संयम

★ संयम वह पावन सूत्र है, जिसके बिना जीवन रुपी मार्ग पर चलना संभव नहीं है ।

★ संयम निधि के द्वारा ही परमनिधि की (मोक्ष) प्राप्ति की जा सकती है ।

★ जीवन रुपी गाड़ी का ब्रेक है - संयम ।

★ दुर्गति से बचने का मार्ग है - संयम ।

★ मोक्ष मार्ग में चलने के लिये संयम परमावश्यक है ।

★ बिना संयम धारण किये, मुक्ति संभव नहीं है ।

★ जैन दर्शन दमन का मार्ग नहीं, संयम का मार्ग है ।

★ दमन का अर्थ जबरदस्ती की तपस्या । जैन दर्शन जबरदस्ती की तपस्या को स्वीकृति नहीं देता शक्ति के अनुसार साधना की अनुमति देता है ।

★ जैन दर्शन में संयम का मार्ग, ज्ञानियों का मार्ग है अज्ञानियों का नहीं ।

★ संयम रुढ़ियों का मार्ग नहीं विरागियों का मार्ग है ।

★ संयम ज्ञान और वैराग्य के साथ होना चाहिए ।

★ संयम वह परम रत्न है जो सिर्फ मनुष्य में ही मिल सकता है । ज्ञान एवं वैराग्य से रहित संयम उपलब्धि प्राप्त नहीं करा सकता है ।

★ ज्ञान एवं वैराग्य युक्त संयम ही मोक्षरुपी गंतव्य तक पहुँचा सकता है ।

★ धर्म का एकमेव आधार है - संयम ।

★ दुर्गति से बचकर मोक्ष मार्ग पर चलने के लिये संयम परमावश्यक है ।

★ यदि जीवन में संयम रुपी ब्रेक है तो आपकी गाड़ी सुचारु रुप से गंतव्य तक पहुँच जायेगी ।

★ मनुष्य गति में परिपूर्ण संयम होता है, जिसे देव गति के देव पाने के लिये तरसते हैं ।

★ सम्यग्दृष्टि देव भी संयम रत्न न मिलने पर दुखी होते हैं ।

★ संयम अनमोल रत्न है, जिसको पाना आसान नहीं है ।

★ संयम अमूल्य निधि है, जो सभी को प्राप्त नहीं हो पाती है ।

★ जिसके जीवन में संयम है, उसके जीवन में सब कुछ है ।

★ संयम के समक्ष, विश्व की समस्त संपदा फीकी दिखाई देती है ।

★ असंयमित अवस्था का कन्ट्रोल है - संयम ।

★ मन, वचन, काय की कुप्रवृत्ति को रोकने का मंत्र है - संयम ।

★ असंयमित जीवन, व्यक्ति को दुर्गति में पटक देता है ।

★ संयम के बिना मोक्ष नहीं मिल सकता ।

★ संयम के बिना तीन काल में मुक्ति की प्राप्ति संभव नहीं ।

★ संयम के अभाव में संसार भ्रमण करना पड़ेगा ।

★ असंयम अवस्था तो बिना ब्रेक की अवस्था है ।

★ चाहे तीर्थंकर ही क्यों न हों, बिना दिगम्बरी दीक्षा (संयम) धारण किये उन्हें मोक्ष नहीं हो सकता ।

★ सिर्फ मोक्ष की चर्चा करने से या आगम को कंठस्थ कर लेने से या शास्त्रों को रट लेने से कल्याण नहीं होता । कल्याण सिर्फ संयम से संभव है ।

★ बिना आचरण के मुक्ति नहीं होती ।

★ संयम धारण करने के लिये साधना करनी होगी।

★ असंयम में अकाम निर्जरा होती है संयम में अविपाक निर्जरा होती है।

★ शक्ति के अनुसार संयम धारण करो किंतु संयम के भेष में आकर ये मत कहो कि अब पालन नहीं होता है।

★ संयम खेल नहीं साधना है।

★ संयम का मार्ग कायरों का नहीं अपितु वीरों का है।

★ संयम का मार्ग अज्ञानियों का नहीं, ज्ञानियों का है, रागियों का नहीं, वैरागियों का है भोगियों का नहीं योगियों का है।

★ संयम दुर्लभ रत्न है जिसे प्राप्त करना आसान नहीं, यदि एक बार प्राप्त भी हुआ और छूट गया तो पुनः प्राप्ति संभव नहीं है।

★ संयम वेष धारण कर खेल मत करो ताकि संयम मजाक न बने।

★ ज्ञान एवं वैराग्य से हीन संयम व्यर्थ है।

★ संयम धर्म ही मानव जीवन का आभूषण है।

★ वाणी भूषण नहीं, संयम भूषण बनो।

★ संयम वह धर्म है जो सीधे मुक्तिपुरी ले जाता है।

★ संयम ही मुक्ति मंजिल का मार्ग है।

★ संयम धारण करने वाला अधिक से अधिक ३२ भव में नियम से मोक्ष चला जाता है।

★ जो संयम के साथ उत्कृष्ट सल्लेखना धारण कर, समाधि के साथ मरण करता है वह २- ३ भव में नियम से मोक्ष चला जाता है।

★ मानव जीवन की शोभा शील, संयम से होती है।

★ संयम से आधि, व्याधि, उपाधि, सर्व रोग मिटते हैं।

★ संयम से आत्मा अपने स्वरुप में स्थित हो जाती है।

★ संयम ही मुक्ति का सोपान है।

★ संयम ही मुक्ति का द्वार है।

★ बिना संयम के मोक्ष की प्राप्ति असंभव है।

★ इस मानव जन्म का यही सार है अपनी शक्ति को न छिपाकर संयम को धारण करना और आत्म कल्याण की भावना करना।

★ जिस समय ज्ञानी जीव शांत भाव को प्राप्त होता है, उस समय संयमी होता है और क्रोधादि कषायों के आधीन हुआ वही ज्ञानी जीव असंयमी होता है।

★ विषयों की चाह की दाह रुपी नागिन से डंसे हुए प्राणी को लोभादि कषाय का तीव्र विष चढ़ जाता है, इस विष के झाड़ने का अथवा जिस कर्म के उदय से कषाय के विष का वेग चढ़ा है, उसको नष्ट करने के लिए संयम ही महामंत्र है इसलिए प्रज्ञावान को यही उचित है कि वह संयम धारण करके आत्म कल्याण करें।

★ शील संयम के धारी साधुओं का संयम पालते हुए शीघ्र मरना अच्छा है परंतु सम्यक् शील को भंग करके कल्पों काल तक जीना भी श्रेष्ठ नहीं है।

तप

★ तप किये बिना आत्मा की कर्म कालिमा नहीं छूट सकती ।

★ तप के बिना मुक्ति नहीं मिल सकती ।

★ तप का अर्थ जो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान एवं सम्यक् चारित्र अर्थात् रत्नत्रय के साथ कर्म - क्षय के लिये तपश्चरण किया जाता है, वही सम्यक् तप है ।

★ चार ज्ञान के धारी तीर्थंकर भी क्यों न हों, उन्हें भी तपश्चरण के बिना, ध्रुव सिद्धि नहीं हो सकती है ।

★ दिगम्बरी दीक्षा धारण कर उन्हें भी तप करना पड़ता है , तभी मुक्ति श्री की प्राप्ति होती है ।

★ जब तप सम्यक् अवस्था में पहुँच जाता है , तब वह सूर्य जैसा पराक्रम धारण कर लेता है ।

★ सूर्य मूल (केन्द्र) में ठंडा होता है किन्तु किरणें गर्म (उष्ण) होती हैं, वैसे ही सम्यक् तप मूल में ठंडा किन्तु उसकी उष्णता से आत्मा में लगी कर्म कालिमा, जलकर ख्राक हो जाती है एवं निर्मल आत्मा प्रगट हो जाती है ।

★ तपस्या जैसा संसार में कोई दूसरा शस्त्र नहीं है जो अंतरंग के कर्मों को नष्ट कर सके ।

★ तप के बिना जीवन में पवित्रता नहीं आ सकती ।

★ आकांक्षाओं का निषेध कर देना ही सबसे बड़ा तप है ।

★ जब तक व्यक्ति तप को अंगीकार नहीं करता, तब तक उसका उत्थान होना असम्भव है ।

★ सांसारिक तपन को दूर करने वाला है - सम्यक् तप ।

★ शुद्धात्मा की चर्चा करने मात्र से शुद्धात्मा की प्राप्ति नहीं होगी तप करना पड़ेगा ।

★ तप रुपी अग्नि से ही आत्मा शुद्ध होती है ।

★ तप का अर्थ जिससे तपा जाये ।

★ प्रायः व्यक्ति प्रतिदिन तपता है । कोई व्यक्ति काषायाग्नि में तपता है या क्रोध रुपी अग्नि में तपता है या सूर्य की तपन में तपता है किन्तु ये धर्म नहीं है ।

★ बिना तप किये अंतः करण में शांति नहीं मिल सकती ।

★ सम्यक् तप अंतरंग में समता को लाता है ।

★ जब तप सही दिशा में पहुँच जाता है फिर तप जैसा संसार में कोई दूसरा अस्त्र नहीं होता ।

★ बाहर का शस्त्र तो बाहर के शत्रुओं को ही नष्ट कर सकता है अंतरंग शत्रुओं को नहीं । तप रुपी शस्त्र, अंतरंग शत्रुओं को समाप्त कर देता है ।

★ तपश्चरण से नियम से सिद्धि होती है ।

★ सोने को तपाया नहीं जाये तो शुद्ध स्वर्ण प्राप्त नहीं हो सकता । खदानों से पाषाण युक्त सोना निकलता है । उसमें १६ ताव दिये जाते हैं, तभी शुद्ध स्वर्ण प्राप्त होता है । वैसे ही संसारी आत्मा को तपाया जाता है, तभी शुद्धता की प्राप्ति होती है ।

★ तपस्या से संक्लेशता नहीं, अपितु विशुद्धात्मा की प्राप्ति होती है विशुद्धात्मा जाग्रत होती है ।

★ सम्यक् तप संवर - निर्जरा का कारण है ।

★ तप से आत्मा पावन - पवित्र बनती है।

★ इह लोक - परलोक के सुख से निरपेक्ष रहकर समता भाव से काय - क्लेश आदि करना तप धर्म है।

★ तप तीन प्रकार के होते हैं - सात्विक, राजसिक, तामसिक।

★ अपेक्षा लेकर अर्थात् सिद्धि प्राप्ति हेतु व्रत आदि करना, शत्रु सुरक्षा एवं राज्य लक्ष्मी आदि की प्राप्ति के लिये तप करना राजसिक तप है।

★ तामसिक तप - विनाश, क्षति के लिये तपस्या करना या आवेशादि में भोजन नही करना ये तामसिक तप कहलाता है।

★ सात्विक तप जो कर्म क्षय के लिये किया जाता है वह सम्यक् तप धर्म है।

★ कषायों से छूटने के लिये, मुक्ति प्राप्ति के लिये किया गया तप ही सम्यक तप है।

★ ज्ञान के साथ किया गया तप या पारमार्थिक प्रयोजन के लिये किया गया तप ही तप धर्म है।

★ ज्ञान के बिना आसक्ति सहित किया गया उपवास आदि तप नहीं, यह तो अकाम निर्जरा का कारण है और गजस्नानवत् है।

★ इच्छाओं का निरोध कर देना ही सबसे बड़ा उत्तम तप धर्म है।

★ इच्छाएँ बढ़ती जायें और आप तपस्या करते जाएँ तो वह फूटे घड़े की तरह होगा।

★ उपवास करो धर्म वृद्धि के लिये न कि टी. वी. आदि देखने

के लिये।

★ उपवास, भगवान की आराधना, पूजा आदि धर्म वृद्धि के लिये करो तभी वह तप है।

★ १२ प्रकार का तप होता है ६ बाह्य ६ अंतरंग। बाह्यतप, अंतरंग तप की सिद्धि के लिये होते है।

★ आत्म साक्षात्कार के लिये तप का अद्वितीय महत्व है।

★ सोने का मैल, आग में तपने से नष्ट होता है, उसी प्रकार आत्मा की मलिनता तपस्या की आग से नष्ट हो जाती है।

★ तपस्या सकाम नहीं निष्काम होना चाहिए।

★ तपस्या की डगर तक पहुँचने के लिये, कष्टों कठिनाइयों का आकंपित वरण करना होगा।

★ आत्मजयी बनने के लिये विसर्जन की ओर सहर्ष उन्मुख होना होगा।

★ आत्मशुद्धि के लिये, आत्मकल्याण के लिये तप परमावश्यक हैं।

★ यह तप ही चिंतामणी दिव्य रत्न है, महान कल्पद्रुम है, तप ही सदा रहने वाला निधान / खजाना है और तप ही उत्कृष्ट कामधेनु है।

★ जो आत्म स्वरुप में तो स्थिर नहीं है किंतु तप करता है तथा व्रतों को धारण करता है उस सब तप, व्रत को सर्वज्ञ देव अज्ञान तप, अज्ञान व्रत कहते है।

त्याग

★ त्याग ही जीवन को पावन बनाता है।
★ त्याग ही मानव को ऊँचाइयों की ओर उठाता है।
★ त्याग ही जीवन को सफल एवं पवित्र बनाता है।
★ एक छोटे से त्याग से भी मानव मनुष्य से देव बन सकता है।
★ त्याग नहीं करेंगे तो हम नीचे गिरते जायेंगे।
★ त्याग से व्यक्ति स्वाधीन होता है।
★ त्याग ही महान धर्म है प्रत्येक क्षेत्र में त्याग की ही विशेष भूमिका है।
★ त्याग के बिना जीवन नहीं चल सकता, त्याग सब करते हैं पर कोई पराधीनता में करता है तो कोई स्वाधीनता में।
★ हम जितना - जितना बाह्य वस्तुओं का त्याग करेंगे उतना हम मोक्ष के समीप होंगे।
★ श्रद्धा एवं ज्ञान के अभाव में त्याग एक रुढ़ि बन जाता है।
★ उत्तम त्याग धर्म, छोड़ने का संकेत देता है, बाहरी वैभव का अर्जन नहीं अंतरंग - वैभव का अर्जन करो।
★ छोड़ना धर्म है - जोड़ना नहीं।
★ छोड़ने से व्यक्ति हल्का होता है जबकि जोड़ने से भारी होता है।
★ छोड़ने से व्यक्ति ऊपर उठता है जोड़ने से व्यक्ति वजनदार होकर नीचे जाता है।
★ जो तुम्हारा नहीं था और न तुम्हारा है और न तुम्हारा होगा, उसे ग्रहण करोगे तो वजनदार होकर डूब जाओगे।

★ व्यक्ति यदि अंतरंग में आसक्ति से भरा है तो नीचे जायेगा।
★ आसक्ति या मूर्छा का नाम परिग्रह है।
★ पदार्थों के प्रति आसक्ति ही व्यक्ति को गर्त में डाल देती है।
★ व्यक्ति जीवन भर जोड़ता रहता है, फिर भी उसकी आकांक्षा पूर्ण नहीं हो पाती और आकांक्षा में जीवन का अंत कर देता है।
★ धन का संग्रह करना श्रेष्ठ नहीं, अपितु धर्म का संग्रह करना श्रेष्ठतम है।
★ जोड़ना है तो अच्छाईयों को जोड़ो, गुणों को जोड़ो क्योंकि व्यक्ति गुणों से ऊपर उठता है। गुणों से पावन - पवित्र बनता है।
★ जब तक व्यक्ति के जीवन में बाहरी वैभव तथा सम्पत्ति की कीमत रहती है, तब तक वह धर्म से नहीं भर सकता।
★ यदि कोई कहता है कि मैं अभी धन कमा लूँ फिर दान करुँगा। वह व्यक्ति उसके समान है जो स्नान का लक्ष्य लेकर नाली में लोटता है।
★ आप स्नान करो या न करो, परन्तु कम से कम नाली में मत लोटो। स्नान के लक्ष्य से कीचड़ लगाने वाला व्यक्ति महामूर्ख है। विवेकी वह है जो कीचड़ लगने न दे तथा जो पूर्व से लगा हुआ है, उसके धोने के लक्ष्य से स्नान करें। कहने का तात्पर्य यह है कि दान, कमाई से नहीं, अपितु जो सम्पत्ति आपके पास है, उसका दान करो।
★ सम्पत्ति का दान करना ही उसका सदुपयोग करना है।
★ धन की तीन गति हैं - दान, भोग और नाश।
★ धन सम्पत्ति को धार्मिक कार्यों में दान करना सबसे श्रेष्ठ है, नहीं तो उसकी अंतिम गति विनाश है।

★ दान उधार नहीं, नगद होता है। इस हाथ दीजे, उस हाथ लीजे।

★ उत्तम त्याग धर्म अपने आपको जानने का दिन है।

★ ममत्व छोड़ देना त्याग धर्म है।

★ त्याग धर्म दूसरा संकेत देता है छोड़ना सीखो, जोड़ना नहीं।

★ त्याग छोड़ने की बात करता है।

★ अरे ! जो तुम्हारा है नहीं, उसे जोड़कर वजनदार मत बनो।

★ पत्थर वजनदार होता है वह डूब जाता है किन्तु तुम्बी हल्की होती है, वह नहीं डूबती है।

★ जोड़ने से संसार सागर में डूब जाओगे।

★ आप परिग्रह के भार से, संग्रह की वृत्ति से मूर्छा, ममत्व से भरे रहोगे, भारी रहोगे तो नियम से आप डूबोगे। जैसे - जैसे आपका वजन कम होता जायेगा, वैसे - वैसे आप ऊपर उठते जाओगे।

★ त्याग तुम्हें ऊपर उठने का संकेत देता है।

★ बहुत आरंभ एवं बहुत परिग्रह नरकायु के आस्रव का हेतु है।

★ जैसे - जैसे आसक्ति बढ़ती जायेगी, वैसे - वैसे आप दुर्गति में गिरते जाओगे।

★ जोड़ना बहादुरी या वीरता नहीं, छोड़ना वीरता है।

★ भावों की विशुद्धि के लिए बाह्यपरिग्रह का त्याग किया जाता है। जो अंतरंग परिग्रह से सहित है उनका बाह्यत्याग निष्फल है।

आकिंचन्य

★ स्वप्न से जागने का संकेत देता है, उत्तम आकिंचन्य धर्म।

★ आत्म जागृति का प्रतीक है आकिंचन्य धर्म।

★ अन्तरात्मा में झाँकने का माध्यम है, आकिंचन्य धर्म।

★ अपने आप में तल्लीन हो जाना आकिंचन्य धर्म है।

★ आकिंचन्य का अर्थ है - न मेरा था, न मेरा है और न मेरा रहेगा। सत्य का प्राण आकिंचन्य है।

★ वास्तविकता को वास्तविकता एवं सत्य को सत्य जान लेना ही आकिंचन्य धर्म है।

★ चेतन एवं अचेतन दोनों प्रकार के परिग्रह का त्याग कर देना उत्तम आकिंचन्य धर्म है।

★ जो लौकिक व्यवहार को भी छोड़ देता है उसके जीवन में आकिंचन्य धर्म आ जाता है।

★ आकिंचन्य धर्म आत्म - जागृति एवं अंतरंग को निहारने का संकेत देता है।

★ आकिंचन्य का अर्थ आत्म स्वभाव के अलावा, अन्य कुछ भी मेरा नहीं है।

★ धन, वैभव, मकान, दुकान आदि सभी अचेतन परिग्रह एवं स्त्री, पुत्र, गाय, भैंस आदि सभी चेतन परिग्रह को तिलांजलि देकर आत्म - स्वभाव में रमण करना ही आकिंचन्य धर्म है।

★ आकिंचन्य धर्म को यदि आप जानना चाहते हो तो धन के लिये धर्म को छोड़ने के स्थान पर धर्म के लिये धन को छोड़ना प्रारंभ कर दो।

ब्रह्मचर्य

★ आत्म स्वभाव में रमण करना ही उत्तम ब्रह्मचर्य है।

★ दस धर्म की सीढ़ियों में अंतिम सीढ़ी है - उत्तम ब्रह्मचर्य इसको पार किये बिना मोक्षरुपी मंजिल की प्राप्ति संभव नहीं।

★ उत्तम ब्रह्मचर्य के बिना साधना, उपलब्धि रहित होती है।

★ ब्रह्मचर्य धारी के प्रति देवता भी स्वत: समर्पित हो जाते हैं।

★ ब्रह्मचारी ईश्वर का सदस्य है।

★ वासना जीवन का विनाश करने वाली है।

★ वासना में उत्थान नहीं पतन होता है।

★ कुशील एक हलाहल विष की तरह है, जिसके सेवन से मृत्यु अवश्यंभावी है।

★ कुशील से शारीरिक एवं मानसिक दोनों शक्तियाँ नष्ट होती हैं।

★ अब्रह्म इज्जत को धोकर माथे पर कलंक का टीका लगा देता है।

★ ब्रह्मचर्य यह वह सोपान है , जिसके बिना सभी सीढ़ी चढ़ना निरर्थक है।

★ कुशील उपलब्धियों को समाप्त करने वाला है।

★ ब्रह्मचर्य व्रत एक महानतम व्रत है, जिसके अभाव में साधना का विकास संभव नहीं।

★ ब्रह्मचारी को स्वत: ही सिद्धि हो जाया करती हैं।

★ दिगम्बर संत कभी चमत्कारों या ऋद्धियों के लिये साधना नहीं करते। उन्हें तो एक मात्र ब्रह्मचर्य के सद्भाव से, अनायास सिद्धियाँ हो जाया करती हैं।

★ व्यक्ति जन्मत: निर्विकारी होता है जन्म से वासना नहीं होती वह पवित्र मन वाला होता है।

★ वासना व्यक्ति को शैतान बना देती है।

★ जीवन को सारे कष्टों से बचाकर सुरक्षित कर देता है ब्रह्मचर्य।

★ वासना हलाहल (विष) है बदनामी का कारण है।

★ ब्रह्मचर्य प्राणी के जीवन में आनंद की, सुख की, शांति की, निराकुलता की, उत्साह एवं हर्ष की स्थिति उत्पन्न करता है।

★ अब्रह्म सदैव दु:ख को, अशांति को, आकुलता को, क्लेश को, संताप को, रुग्णता को, शोक को, नीरसता को, बल हीनता को देता है।

★ जब आप विषय सेवन कर रहे होंगे उस समय आप प्रसन्न हो सकते हो, लेकिन आप जब उसके बाद की स्थिति पर विचार करोगे तब आपको पश्चाताप एवं खेद ही प्राप्त होगा।

★ ब्रह्मचर्य उस शक्ति को एकत्रित करने का नाम है जो शक्ति हमें अपनी तपस्या में व्यय करनी है।

★ एक बार अब्रह्मसेवन करने से नौ कोटि जीवों की हत्या होती है।

★ अब्रह्म सेवन के समय परिणाम बहुत क्रूर तथा विषयासक्त होते हैं।

★ दयालु व्यक्ति ही ब्रह्मचर्य व्रत को धारण करने में समर्थ होता है।

★ विश्व के सभी धर्मों ने ब्रह्मचर्य को ही प्रधानता दी है।

★ जैन धर्म ने ब्रह्मचर्य को साधना कहा है।

★ जो वासनाओं के फेर में पड़ जाते हैं उनके अधिकांश कार्य बिगड़ जाते हैं।

★ ब्रह्मचर्य की गहन अनुभूति ही जीवन में परिवर्तन लाती है।

★ ब्रह्मचर्य मनुष्य को प्रतिक्षण सजग करता है और स्वयं को सतत सुख शांति की ओर लगाता है।

★ ब्रह्मचर्य व्रत परमात्मा के फूल खिलाता है।

★ मानव के हृदय को भरने में ब्रह्मचर्य ही पूर्ण सक्षम है।

★ वासना से सुख की आस, ओस से प्यास बुझाना है।

★ वासना वह अग्नि है जिससे शरीर की शक्ति क्षीण हो जाती है।

★ ब्रह्मचर्य का पालन न केवल शारीरिक शक्ति का ही साधक है किन्तु आत्मिक अचिन्त्य शक्ति का भी साधक है।

★ पर स्त्रियों के संबंधी पिता, पुत्र, पति, भाई, दादा, ताऊ, चाचा इत्यादि कोई भी अपनी माता, बहिन, बेटी, पुत्र, वधु, भतीजी के शील का नाश होता देखने को समर्थ नहीं है जैसे तुमको शील प्रिय है, उसी प्रकार और भी अर्थात् दूसरों को भी शील धर्म प्रिय है।

नि:शंकित (विश्वास)

★ संसार की संपूर्ण व्यवस्थाएँ एक मात्र विश्वास पर ही निर्भर हैं।

★ विश्वास एक ऐसा महान सूत्र है जिसके अभाव में जीवन नहीं चल सकता है।

★ विश्वास के अभाव में जीवन, जीवन नहीं अपितु मृत है।

★ विश्वास ही मानव जीवन का प्राण है।

★ जिस घर, परिवार, नगर तथा राष्ट्र के बीच हम सब रहते हैं उन सभी के मध्य विश्वास छुपा होता है।

★ विश्वास व्यक्ति को जोड़ता है और अविश्वास व्यक्ति को तोड़ता है।

★ विश्वास ही एकीकरण करने का अमोघ मंत्र है।

★ विश्वास के बल पर ही संसार के रिश्ते - नाते जुड़े होते हैं।

★ जिस दिन विश्वास समाप्त हो जायेगा, उस दिन सब कुछ समाप्त हो जायेगा।

★ जब तक विश्वास है तब तक उपलब्धियाँ सम्भव हैं।

★ जहाँ विश्वास श्रद्धा तथा आस्था है वहीं शांति - संतोष तथा आनंद है।

★ जिस समय विश्वास, आस्था, श्रद्धा पलायन कर गयी समझो उसी समय तुम्हारा जीवन दु:ख - पीड़ाओं से भर जायेगा।

★ अविश्वास ही अशांति - असंतोष का जनक है।

★ विश्वास यद्यपि न लिया जाता है, न दिया जाता है अपितु विश्वास का संबंध स्वमेव निर्मापित होता है।

★ विश्वास (आस्था) ही जीवन में प्रकृति का बहुत बड़ा वरदान है ।

★ यदि विश्वास नहीं होता, तो आप भोजन नहीं करते ।

★ यदि विश्वास नहीं होता, तो संसार की सारी व्यवस्थाएँ फेल हो जाती हैं ।

★ वश्वास पर ही संसार की समस्त क्रियाएँ सुचारु रुप से चल रही हैं ।

★ आपको विश्वास है कि धरती फटेगी नहीं, तभी तो आप सभी उस धरती पर बैठे हुये हैं ।

★ नौकर को मालिक पर, मालिक को नौकर पर, मित्र को मित्र पर, गुरु को शिष्य पर तथा शिष्य को गुरु पर विश्वास है, तभी संबंध स्थापित होते हैं ।

★ बेटा कभी माँ से यह नहीं पूछता कि माँ भोजन में क्या - क्या मिलाया है । क्योंकि बेटे को माँ पर विश्वास है ।

★ बेटे को विश्वास है कि माँ बेटे का अहित नहीं चाहती एवं माँ को बेटे के प्रति भी ऐसा ही विश्वास होता है ।

★ आपको विश्वास है कि धूप का निरसन छाँव में बैठने से ही होगा, तभी तो आप छाया में बैठते हो ।

★ विश्वास ही जीवन की आधार शिला है ।

★ विश्वास ही नींव हैं जिस पर जीवन रुपी इमारत खड़ी होती है ।

★ विश्वास समाप्त होते ही सम्पूर्ण उपलब्धियाँ पलायन कर जाती हैं ।

★ अविश्वास में व्यक्ति टूटता है और अविश्वास में ही जगह - जगह विसंवाद हो जाते हैं ।

★ अविश्वास ही अशांति और कलह की जड़ है ।

★ विश्वास समाप्त होते ही, भ्रम - संदेह उत्पन्न होने लगता है ।

★ जब तक तुम अविश्वास में रहोगे, तब तक शांति, सुख एवं आनंद नहीं पा सकते ।

★ विश्वास समाप्त होते ही, भ्रांति का बीज अंकुरित हो जाता हैं ।

★ अविश्वास एकता को तोड़ देता है ।

★ अविश्वास का जन्म होते ही समस्त संबंध टूटने लगते हैं ।

★ विश्वास दिलाना एवं दूसरों के विश्वास में रहना आवश्यक होता है ।

★ आज तक दूसरों को विश्वास दिलाते रहे, किन्तु स्वयं विश्वास में नहीं रहे ।

★ अपने आप को विश्वास से जोड़ो एवं दूसरों को भी विश्वास से जोड़ो ।

★ विश्वास टूट गया तो फिर जीवन पंगु हो जायेगा, कटी भुजा की तरह हो जायेगा ।

★ जैसे एक भुजा पूरा कार्य नहीं कर सकती, वैसी ही अवस्था उस पंगु विश्वास की होती हैं । विश्वास रखना एवं स्वयं विश्वस्त होना ये दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं दोनों तरफ विश्वास होना चाहिए, तभी शांति स्थापित होती है ।

★ विश्वास (आस्था) हमारे जीवन में परम आवश्यक है ।

★ विश्वास (आस्था) से ही धर्म का पाठ प्रारंभ होता है ।

★ बेटे को माँ के प्रति विश्वास सर्व प्रथम आवश्यक होता है ।

★ विश्वास - (श्रद्धा) बिना समस्त साधना व्यर्थ है ।

★ हमारा विश्वास बँटा हुआ नहीं होना चाहिए ।

★ विश्वास डाँवाडोल दीपक की तरह नहीं, अपितु अंकपित दीपक की तरह तथा विश्वास (आस्था) स्तंभ की तरह होना चाहिए, तभी उपलब्धियाँ संभव हैं।

★ आराधना भक्ति के पूर्व, विश्वास (आस्था) होना अनिवार्य है।

★ विश्वास आस्था तथा श्रद्धा से ही शांति - आनंद की वर्षा होती है।

★ जीवन में विश्वास (आस्था) को जाग्रत करो, यही पावनता का मार्ग है।

★ देव, शास्त्र, गुरु के ऊपर तलवार पर चढ़े पानी की तरह अकंप श्रद्धा करना नि:शंकित अंग है।

★ यदि श्रद्धा सच्ची है तो वह निर्वाण प्राप्ति में हेतु बनती है।

★ विश्वास से ही सारे रिश्तेनाते चलते हैं।

★ शंकायें वहाँ उत्पन्न होती है जहाँ हृदय में सच्ची श्रद्धा नहीं होती है।

★ व्यक्ति बहुत तप करता है, उपवास करता है, ज्ञानार्जन करता है पर बिना श्रद्धा के सारे जप, तप व्यर्थ होते है।

★ विश्वास अंक है जप, तप, चारित्र के साथ यदि विश्वास नहीं तो वह शून्य की तरह है।

नि:कांक्षित

- आज हम जिस शांति सुख के अभाव में ग्रसित हो रहे हैं, पीड़ित हो रहे हैं, उसके विषय में प्राचीन संतों ने चिंतन कर बताया है कि व्यक्ति वस्तु के अभाव में कम आकांक्षाओं से अधिक दु:खी है। वस्तु का अभाव संभवत: सीमा तक होता है।
- आकांक्षाएँ असीमित होती हैं।
- कल्पनाओं का कभी अंत नहीं होता है।
- कपड़ों की पूर्ति होते ही मकान - दुकान, धन आदि की अनवरत् आकांक्षा वृद्धिगंत होती जाती है।
- भगवान की भक्ति - आराधना, कामनाओं और आकांक्षाओं से रहित करो।
- कामना रहित भक्ति ही सच्ची भक्ति है।
- कामना रहित साधना ही, सच्ची साधना है कामना सहित की गयी भक्ति या साधना, साधना नहीं वह तो कामनाओं की पूर्ति है।
- सारी कामनाओं को मंदिर के द्वार पर ही छोड़ कर प्रवेश करें, निष्काम नि:कांक्षित का यही अर्थ है।
- भगवान अंतर्यामी हैं बिना माँगे सब कुछ मिल जायेगा।
- जब तक कामनाओं से भरे रहोगे तब तक शून्य रहोगे।

- वर्तमान को प्रकाशित करो और उसे अच्छाईयों से सजाओ। भविष्य की चिंता हरगिज मत करो।
- कल्पनायें ही दुखों की जननी हैं।
- कामनाओं, वासनाओं तथा आकांक्षाओं को छोड़ वर्तमान में जीना सीखो। वर्तमान में ही भविष्य का निर्माण छुपा है।
- नि:कांक्षित भक्ति फलदायी होती है।
- यदि आकांक्षा बनी रहेगी तो सच्चे समीचीन फल की प्राप्ति नहीं होगी।
- आकांक्षाये अनंत होती है।
- आचार्य भगवन् कहते हैं कि यह आकांक्षा रुपी गड्ढ़ा इतना बड़ा है कि जिसमें विश्व के संपूर्ण पदार्थ अणु प्रमाण दिखाई देते है।
- जिसके जीवन में आकांक्षाये बनी हुई है। उसे चाहे जितनी भी धन संपदा मिल जाए, स्त्री, पुत्र आदि सुयोग्य अनुकूल कुटुम्बी मिल जाए, नगर, राज्य, खेवट, कर्बट, मटम्ब, पत्तन आदि का स्वामी भी बन जाए तो भी वह कभी भी सुख, शांति और आनंद का अनुभव नहीं कर सकेगा उसका जीवन तो सदैव आकुलता से ही भरा रहेगा।
- आकांक्षाओं में धर्म नहीं होता।
- आकांक्षाओं की पूर्ति संभव नहीं है।
- जब तक आकांक्षायें रहेंगी तब तक वास्तविक धर्म नहीं आ सकता है।
- अनंत आकांक्षाओं में डूबा प्राणी अपने जीवन को व्यर्थ में गंवा देता है।

- आकांक्षाएँ धर्म के फल को सीमित कर देती हैं।
- आकांक्षा अधर्म है, उसको छोड़ देना धर्म है।
- प्रत्येक प्राणी का आशा रुपी गड्ढा इतना बड़ा है कि उसमें विश्व की विभूति भी भर दी जाये, तो भी नहीं भर सकता है।
- आकांक्षा की पूर्ति न कभी हुई है और न कभी हो सकती है।
- जब तक जीवन में आकांक्षाएँ रहेंगी, तब तक तुम्हारा जीवन, धर्म से रिक्त रहेगा।
- आज का प्राणी आकांक्षा लेकर धर्म कार्य करता है।
- आकांक्षा सम्यग्दर्शन का दोष है।
- जब तक कांक्षा का भाव रहता है तब तक किसी भी मानव को वैराग्य की प्राप्ति नहीं हो सकती।
- आकांक्षा मात्र आकुलता की जननी है अत: वह परमात्मा का दर्शन नहीं करा सकती।

निर्विचिकित्सा

- धर्मात्मा के शरीर को देख ग्लानि करना सबसे बड़ा अपराध है।
- धर्मात्मा से घृणा करना यानि धर्म से घृणा करना है।
- धर्मात्मा से जुगुप्सा करना , आत्म स्वभाव की हत्या करना है।
- धर्मात्मा से ग्लानि करना, सुख- शांति से ग्लानि करना है।
- ग्लानि करना है तो अपने अपराध से करो तथा घृणा करना है तो अपने अंदर की बुराईयों से करो।
- अपनी बुराईयों पर ग्लानि करना धर्मात्मा की निशानी है।
- धर्मात्माओं को धर्म दिखाई देता है तो अधर्मात्माओं को बुराईयाँ नजर आती है।
- यदि किसी का आदर - सम्मान नहीं कर सको तो उसका अनादर या अपमान करने का तुम्हें कोई अधिकार नहीं।
- धर्मात्मा वही है जो कभी भी किसी धर्मात्मा का तिरस्कार नहीं करता।
- अच्छे कर्यों के फल में भले देरी हो जाये किन्तु बुरे कार्यों के फल में कभी भी देरी नहीं होती। निर्विचिकित्सा या निर्जुगुप्सा सम्यग्दर्शन का महत्वपूर्ण अंग है जिसके अभाव में चार व्यक्ति एक साथ न बैठ सकें एवं जिसके सद्भाव में चार व्यक्ति एक साथ बैठ सकें।
- चिकित्सा जब भी होती है, बीमारी - रोग की होती है।

- जब तक बीमारी होती है, तब तक व्यक्ति के पास धर्म नहीं हो सकता।
- धर्म के अभाव में रोग की एकता होती है।
- आज का प्राणी शारीरिक बीमारी से इतना दुःखी नहीं, जितना मानसिक बीमारी से दुःखी है।
- शरीर बीमार हो सकता है आत्मा कभी बीमार नहीं होती।
- मानसिक बीमारी दूर करने का सफल उपाय अंदर की ग्लानि दूर कर देना है।
- जब तक अंतरात्मा से ग्लानि नहीं निकालोगे, तब तक मानसिक रोग का इलाज संभव नहीं।
- ग्लानि, निर्विचिकित्सा के अभाव में ही होती है।
- निर्विचिकित्सा के अभाव में वैमनस्यताएँ, विसंवाद, झगड़ें, द्वेष, बुराईयाँ आदि उत्पन्न होती हैं।
- यह शरीर तो स्वभाव से अपवित्र है जो हड्डी, माँस, खून आदि समस्त अपवित्र पदार्थों से ही निर्मित होता है जब तक इसको देखते रहोगे, तब तक आत्मा में विशुद्धि नहीं आ सकती।
- साधुओं के शरीर को नहीं, धर्म को देखो।
- धर्मात्माओं के शरीर को देख, ग्लानि - घृणा उत्पन्न हो जाना महापाप है, तुमने व्यक्ति से ग्लानि नहीं अपितु धर्म से ग्लानि कर ली।
- धर्म से ग्लानि यानि धर्म की हत्या, आत्मधर्म की हत्या अर्थात् ब्रह्महत्या करना है।
- धर्म, धर्मात्माओं को छोड़कर अन्यत्र नहीं पाया जाता।
- अहंकार से ही ग्लानि का जन्म होता है।

- अभिमान के कारण ही हीन भावनाएँ जागृत होती हैं।
- आसक्ति के कारण ही घृणा पैदा होती है।
- यदि तुम किसी का अच्छा नहीं कर सको तो उसका बुरा मत करो।
- धर्मात्मा का अपमान या तिरस्कार स्वयं का अपमान है, धर्म का तिरस्कार है।
- दूसरों की बुराई करना, धर्मात्मा का लक्षण नहीं।
- धर्मात्मा की दृष्टि धर्म पर, अच्छाईयों पर, गुणों पर आधारित होती है।
- जिस क्षण तुम्हें अच्छाईयाँ नजर आने लग जायें उस क्षण समझो हमारे अंदर धर्म आ गया।
- यदि बुराईयाँ दिखने लग जायें तो समझो धर्म नहीं आया।
- गुणी पुरुषों को देख अपने अंतरंग में झाँक लेना एवं उन जैसे गुणों को संजोंने का प्रयत्न करने लगना बस यहीं से धर्म के रास्ते प्रारंभ होने लगेंगे।
- धर्मात्मा को देख मन प्रफुल्लित हो जाना ही, धर्मात्मा के आदर्श का परिचायक है।
- धर्म के रास्ते कठिन नहीं, उसे समझना कठिन है।
- जिससे तुम ग्लानि कर रहे हो यदि उसका आदर करने लग जाओ, उसके प्रति सम्मान के भाव जागृत हो जायें, समझो ज्ञान ज्योति प्रगट हो गयी।
- धार्मिकता बाहर से नहीं अंदर से जागृत होती है।
- अंतरात्मा से बुराई, ग्लानि का निकल जाना ही धार्मिकता का जागरण है।
- गुणीजन को देख प्रेम - स्नेह उत्पन्न हो जाना, उनको पाकर

अपने को धन्य समझने लग जाना धार्मिक व्यक्ति का परिचय है।

- ग्लानि की स्थिति आ जाने पर भी अंदर ग्लानि उत्पन्न नहीं होना, निर्विचिकित्सा है।
- सम्मान दोगे, सम्मान मिलेगा। अपमान करोगे तो अपमान मिलेगा।
- अच्छाईयों से ही धर्म के रास्ते प्रारंभ होते हैं।
- जीवन में कभी भी धर्मात्मा संत का तिरस्कार नहीं करना, ग्लानि नहीं करना।
- धर्मात्मा का कभी उपहास नहीं करना।
- दिगम्बर संत के प्रति अनादर, ग्लानि करने का परिणाम बहुत दुःख दायी, बड़ा भयंकर होता है।
- दिगम्बर संत कभी भी किसी को शाप नहीं देते। यद्यपि उनके पास शाप और अनुग्रह दोनों शक्ति विद्यमान रहती हैं।
- साधु के मार्ग पर भले कोई शूल क्यों न बिछा दे, वे तुम्हारे मार्ग पर फूल ही बिछायेंगे। आप जहर दोगे, तो वे तुम्हें अमृत देंगे। तुम कष्ट दोगे वे शांति देंगे।
- जो व्यक्ति अभिमान वश दूसरों से ग्लानि करता है, रत्नत्रय धारियों के मलिन शरीर को देखकर ग्लानि करता है तो वह नियम से ग्लानि युक्त शरीर को प्राप्त कर सर्वत्र / संपूर्ण संसार के द्वारा निंदा का पात्र बनता है।

" अमूढ़ दृष्टि अंग "

ॐमिथ्यात्व का प्रशंसक स्व-पर विघातक होता है ।

ॐमिथ्यात्व उतना हानिकारक नहीं, जितनी कि उसकी सराहना हानिकारक है ।

ॐसन्मार्ग पर अटल रहना और उन्मार्ग की मन से भी अपेक्षा नहीं करना अमूढ़ दृष्टि अंग है ।

ॐमिथ्यात्व की प्रशंसा, मिथ्यात्व को बढ़ावा देती है ।

ॐअंधविश्वास मूढ़ता है और आत्म विश्वास - अमूढ़ दृष्टि अंग ।

ॐअमूढ़दृष्टि अंग का धारी बाह्यचमत्कारों से प्रभावित नहीं होता ।

ॐजिसके पास आगम रुप चक्षु हैं, वह कभी मिथ्यात्व के गड्ढे में नहीं गिरता ।

ॐसन्मार्ग पर आकर भी कुमार्ग की प्रशंसा उसी प्रकार से हानिकारक है जिस प्रकार अमृत पात्र में विष की एक बूँद ।

ॐसम्यग्दृष्टि यदि मिथ्यादृष्टि की संगति करे तो वह सम्यग्दृष्टि नहीं रह सकेगा और यदि मिथ्यादृष्टि सम्यग्दृष्टि की संगति करे तो वह मिथ्यादृष्टि नहीं रह सकेगा ।

ॐजिनकी अमूढ़ दृष्टि होती है वे प्राणों की नहीं, प्रण की परवाह करते हैं ।

ॐअमूढ़ दृष्टि व्यक्ति तार्किक होता है कुतर्की नहीं ।

ॐअपने स्वरुप को न जानने वाला अमूढ़ दृष्टि नहीं होता ।

ॐतीन लोक का राज्य भी अमूढ़ दृष्टि को डिगा नहीं सकता ।

ॐमिथ्यात्व की मानसिक प्रशंसा से, असंज्ञी हो जाना अच्छा है, वाचनिक सराहना से, गूँगा रहना अच्छा है तथा कायिक समर्थन से मृत्यु को प्राप्त हो जाना अच्छा है ।

ॐजहाँ मिथ्यात्व की चाह होती है वहाँ आत्म हित की राह नहीं होती ।

ॐकुमार्गियों के कुमार्ग विषयक तर्कों से हमें सतर्क रहना चाहिए ।

ॐजो अपने मार्ग पर विश्वास रखता है वह शीघ्र ही मंजिल को प्राप्त कर लेता है । पर जिसे अपने मार्ग पर संदेह है और जिसकी दृष्टि अन्य मार्ग पर है वह मंजिल को नहीं, भटकनों को पाता है ।

ॐकिसी के कहने पर नहीं, आगम की वाणी पर विश्वास रखो ।

ॐसुनो सबकी, गुनो आगम की ।

ॐजिसने जिनधर्म पाकर भी उसकी प्रशंसा नहीं की उसका जिनधर्म को पाना व्यर्थ है ।

ॐबड़ा आश्चर्य है कि जिस दिन धर्म के लिए देश - विदेश के धुरंधर विद्वान भी श्रद्धा से नमस्कार करते हैं, उस धर्म के होकर भी तुम उसकी कीमत नहीं जानते ।

ॐजीवन गया तो पुनः मिलेगा परंतु श्रद्धा गयी तो पुनः मिलना मुश्किल है ।

ॐ जो दूसरों को देखकर प्रभावित व आश्चर्य को प्राप्त वह होता है जिसे अपने सच्चे जिन धर्म पर अकाट्य श्रद्धा नहीं है ।

ॐ जो जिन धर्म का सच्चा आराधक है वह कैसी भी विपत्ति आ जाए पर अपने समीचीन धर्म से कभी च्युत नहीं होता ।

उपगूहन

- गुणग्राही बनो, दोषग्राही नहीं। प्रत्येक व्यक्ति को गुण - दृष्टि से देखो।
- किसी की अच्छाइयों को नहीं देख सको तो कम से कम बुराइयों को मत देखो।
- अच्छाइयों की प्रशंसा करना मानव का कर्तव्य है, बुराई करना नहीं।
- बुराई करने वाले की अपेक्षा, बुराई सुनने वाला अधिक पापी है।
- यदि बुराई सुनने वाला मना कर दे कि मुझे नहीं सुनना या मौन होकर बैठ जाये या वहाँ से उठकर चला जाये तो फिर सुनाने वाला किसको सुनायेगा।
- आप बुराईयों को सुनने लगें तो सुनाने वाला और अधिक बुराइयाँ देखने लगेगा।
- बुराई एक ऐसी गंदगी है जो मस्तिष्क को गंदा कर देती है।
- बुराई एक ऐसी आग है जो हमारे संपूर्ण गुणों को नष्ट कर देती है।
- बुराई समाप्त हो सकती है किन्तु उसके द्वारा फैली अपकीर्ति कभी समाप्त नहीं होती है।
- निंदा करना सबसे बड़ा दुर्गुण है।
- जिस दिन तुम्हें अपनी गल्तियाँ, अपने अपराध दिखने लग जायें, उसी दिन से तुम्हारे जीवन में नयी जागृति प्रारंभ हो जायेगी।

- बुरा मत देखो, बुरा मत सुनो, बुरा मत कहो, बुरा मत सोचो।
- किसी भी पुरुष की इन आँखों से बुराई मत देखो।
- किसी भी पुरुष की इन कानों से बुराई मत सुनो।
- किसी भी पुरुष की इस मुँह से बुराई मत कहो।
- किसी भी पुरुष का इस मन से बुरा मत सोचो।
- बुराई देखना, सुनना, कहना सबसे बड़ा अपराध है।
- उपगूहन अंग का अर्थ किसी धर्म के अंदर यदि कोई बुराई तुम्हें नजर आ जाये तो उसे ढांक देना चार लोगों के सामने ढ़िढोंरा पीटना नहीं।
- सम्यग्दृष्टि दूसरों की गल्तियों को दोषों को देख कर प्रकट नहीं करता।
- सम्यग्दृष्टि कभी किसी की बुराई ना देखता ना सुनाता है।
- जब तक उपगूहन अंग नहीं आयेगा तब तक जीवन में धर्म अंकुरित नहीं हो सकता।
- निंदा करना पाप है किन्तु सुनना महापाप है।
- निंदा करना सबसे बड़ा जहर है।
- बुराई ऐसा विष है, जिसके सेवन करने से या देखने से व्यक्ति अपने ही गुणों की हत्या कर लेता है।
- बुराई से अपना मन गंदा मत करो।
- यदि आपका मन बुराई की गंदगी से साफ है तो सहज ही दूसरों की भलाई के विचार जाग्रत होंगे।
- दूसरों का बुरा सोचना निंदा करना स्वयं के लिये गड्ढा खोदना है।

स्थितिकरण

- मिटे को मत मिटाओ अपितु उसे बनाने का प्रयत्न करो।
- गिरने वाले को गिरने के पूर्व ही सम्हाल लेना सच्ची करुणा है।
- जो अपने कर्तव्यों से च्युत होने वाला हो, पतित होने वाला हो उसे पूर्व से ही स्थिर कर देना सबसे बड़ा स्थितिकरण है।
- आपने बने का सृजन किया तो कुछ नहीं किया, आपने मिटे को बनाया, असृजन का सृजन किया तो समझो आपने सबसे बड़ा धर्म कर लिया।
- जब तक व्यक्ति के अंदर धर्म की कीमत नहीं आती तब तक स्थितिकरण अंग नहीं आ सकता है।
- जो गिरने वाला है, कर्तव्यों से च्युत होने वाला है, उसे पूर्व में ही सावधान कर देना सर्वश्रेष्ठ सच्चा स्थितिकरण है।
- कोई व्यक्ति पुल से निकलने वाला है और आप जानते हैं कि यह पुल टूटने वाला है, उसे पूर्व में ही सावधान कर देना ये सच्चा स्थितिकरण है।
- चोर माल लेकर जाने लगा फिर भी आप कहते हैं कि मैं देख रहा हूँ। यह ज्ञान, ज्ञान नहीं अज्ञान है। बुरी आदतों में कोई पड़ने वाला है, उसे पूर्व में ही सावधान कर देना ही स्थितिकरण है।
- स्थितिकरण वही कर सकता है जो स्वयं धर्म से प्रभावित हो, जो स्वयं स्थिर हो तथा कर्तव्यों में, आचरण में अडिग हो।

वात्सल्य

- निःस्वार्थ प्रेम से ही समाज, देश एवं राष्ट्र की एकता कायम रह सकती है।
- वात्सल्य, स्नेह, प्रेम ही संगठन का अमोघ साधन है।
- जिस समाज, देश एवं राष्ट्र के वासियों में परस्पर में वात्सल्य, स्नेह, प्रेम होता है उस समाज, देश, राष्ट्र में नियम से संगठन होता है।
- जिस प्रकार नाक बिना चेहरे की शोभा नहीं होती, चेहरे बिना सुंदर शरीर की शोभा नहीं होती, ठीक वैसे ही वात्सल्य बिना धर्मात्मा की शोभा नहीं होती।
- वात्सल्य, धर्मात्मा का श्रृंगार है।
- जहाँ वात्सल्य प्रेम है वहाँ स्वर्ग है।
- लोक व्यवहार में स्वार्थ पूर्ण प्रेम हो सकता है किन्तु धर्म में स्वार्थ पूर्ण प्रेम नहीं होता।
- यदि धर्म नीति में स्वार्थ पूर्ण प्रेम, स्नेह आने लग जाये तो वह वात्सल्य, स्नेह, प्रेम, धर्म को प्राप्त नहीं हो सकता।
- वात्सल्य रत्न धर्मात्मा को कहा जाता है, अधर्मात्मा को नहीं।
- वात्सल्य परिचय नहीं मांगता, परिचय में स्वार्थ जाग्रत हो सकता है।
- धर्मात्मा का निःस्वार्थ वात्सल्य होता है।
- वात्सल्य उसी तरह से जीवन में महत्व शाली है जैसे कि राजा के मुकुट।

- भगवान महावीर ने जिसे वात्सल्य कहा उसे ही ईसा मसीह ने प्रेम, कृष्ण ने स्नेह तो किसी ने अनुराग, भक्ति, समर्पण आदि से पुकारा है ।
- वात्सल्य, स्नेह, प्रेम सभी पर्यायवाची हैं ।
- जिसके प्रति आपका वात्सल्य स्नेह होगा, उसी का उपगूहन या स्थितिकरण संभव होता है ।
- वात्सल्य के अभाव में स्थितिकरण या उपगूहन नहीं हो सकता ।
- वात्सल्य ही जीवन की परम सुगंध है ।
- वात्सल्य धर्म, शरीर से नहीं, आत्मा से संबंध रखता है ।
- वात्सल्य का संबंध लौकिक व्यवहार से नहीं, धर्म से होता है ।
- नि:स्वार्थ प्रेम से ही शांति - सुख के बीज उत्पन्न होते हैं ।
- नि:स्वार्थ वात्सल्य से एकता का उद्‌गम होता है । अत: निस्वार्थ - वात्सल्य एकता का प्रतीक है ।
- वात्सल्य दिखावा नहीं, अंतरंग की निश्छल भावना है ।
- गुरु डांट भी लगाते हैं किन्तु उनके अंतरंग में वात्सल्य की धारा प्रवाहित रहती है ।
- वात्सल्य के प्रारंभ होते ही वैय्यावृत्ति, सेवा, समाधि जैसे गुण उत्पन्न हो जाते हैं ।
- स्वार्थ पूर्ण वात्सल्य विघटन का रुप खड़ा कर सकता है, नि:स्वार्थ प्रेम नहीं ।
- राम के पास कोई सेना नहीं थी, न कोई सिद्धियाँ थी किन्तु

राम के पास सबसे बड़ा अस्त्र वात्सल्य था, जिससे राम के साथ, सभी प्राणी जुड़ते गये, समर्पित होते गये ।

- वात्सल्य की प्रभा से सारा वातावरण प्रेममय हो जाता है ।
- जब आत्मा में धर्म आ जाता है, तब वात्सल्य सहज उमड़ने लगता है ।
- आत्मा का गुण है - वात्सल्य ।
- प्रेम से प्रेम बढ़ता है और कटुता से कटुता ।
- वात्सल्य का अमृत नीर जहाँ बहता है वहाँ सर्वत्र सुख, शांति, आनंद की लहरे उठा करती है ।
- वात्सल्य एक ऐसा वशीकरण मंत्र है जो सारी दुनियाँ को अपना बना लेता है वात्सल्य गुण के अंदर वसुधैव कुटुम्बकम् की भावनायें समाहित होती है ।
- अपना काम बनाने के लिए दूसरों की चापलूसी करना यह वात्सल्य नहीं अपितु वात्सल्य का बाना है ।
- सच्चा वात्सल्य गुण का धारी गौ बच्छ के समान अपने साधर्मी जनों पर नि:स्वार्थ वात्सल्य, प्रीति रखता है ।

प्रभावना

- धर्म के प्रति उत्साह - शक्ति जाग्रत हो जाना ही सच्ची प्रभावना है ।
- अंतरात्मा में धर्म रुपी अंकुर प्रस्फुटित हो जाना ही, वास्तविक प्रभावना है ।
- आत्मा से धर्म वृक्ष शुष्क न हो पाय अर्थात् उसे समय - समय पर चिंतन रुपी जल से सिंचित करते रहना ही, धर्म प्रभावना है ।
- जिस प्रकार किसान खेत में बीज डाल कर उसमें खाद - पानी देता रहता है ताकि वे बीज अंकुरित हों, हरे - भरे बने रहें, शुष्क न हो पायें । ठीक उसी प्रकार आत्मा को धर्म से प्रभावित करते रहना, संत -संगति सदाचरण रुपी खाद - पानी देते रहना ताकि संयम - नियम का पौधा हरा - भरा बना रहे एवं वृद्धिगत होता रहे, यही प्रभाव है ।
- प्रभावना के पूर्व उत्साह शक्ति जागृत करना परमावश्यक है ।
- उत्साह - शक्ति जागृत हुए बिना, धर्मरुपी - वृक्ष शुष्क हो जाता है ।
- उत्साह शक्ति जागृत होते ही, सुख - आनंद की महान वृष्टि होने लगती है ।
- जीवन में जो संयम नियम के बीज बोये उसके विषय में चिंतन करना एवं धर्म साधना के विषय में उत्साह - शक्ति जागृत करना, यही प्रभावना है ।

- धर्म के प्रति दूसरों का उत्साह जागृत कर देना ही प्रभावना है ।
- यदि आपने किसी का उत्साहवर्द्धन कर दिया तो वह उत्साहशील होकर, कालांतर में धर्म के प्रति कई गुने कदम बढ़ा लेगा यही तो धर्म प्रभावना है ।
- आपसे प्रभावित होकर यदि कोई व्यक्ति अपनी जीवन चर्या में परिवर्तन लाये और उसका जीवन भी धर्म से श्रृंगारित हो जाये, इसी का नाम धर्म प्रभावना है ।
- प्रभावना कहीं बाहर से नहीं आती, अपितु आपके आचरण - व्यवहार से उत्पन्न होती है ।
- प्रभावना का दूसरा बिन्दु है - अनुशासन ।
- आपका जीवन यदि अनुशासित है तो आपके अनुशासन को देखकर बहुत सारे लोग प्रभावित होते हैं ।
- यदि आप ही अनुशासन हीन हैं तो आपको देखकर लोग प्रभावित कैसे होंगे ? अर्थात् नहीं हो सकते हैं ।
- अच्छाईयों को देखकर दूसरे खुश हो जायें तथा आपकी धार्मिकता देख आनंदित हो जायें, यही प्रभावना है ।
- आप भी अपनी आत्मा को प्रभावित करें एवं दूसरों को भी प्रोत्साहित करें, यही धर्म प्रभावना का मार्ग है ।
- कैसे मेरा धर्म उन्नति के सर्वोच्च शिखर पहुँचे ? जिन धर्म को मैं कैसे जन - जन तक पहुँचाऊँ ? जिस दिशा में जो प्रयत्न व प्रयास किये जाते है वह सब प्रभावन के हेतु बनते है ।

ज्ञानमद

- ज्ञानी के लिये ज्ञान का मद नहीं होता है ।
- ज्ञान का मद अज्ञानी को होता है ।
- जो स्वयं को सामान्य - लघु मानता है, वही महान बनता है ।
- ज्ञान का मद व्यक्ति को अधोगति की ओर ले जाता है ।
- ज्ञान का मद मीठा जहर है जो व्यक्ति को मदहोश कर देता है ।
- एक बहुत बड़े विद्वान सुकरात हुए उन्होंने अपनी डायरी में लिखा कि जब तक मुझे ज्ञान नहीं था तो हाथी की चाल चलता था और ज्ञान हो जाने के बाद मेरी चाल चींटी की तरह हो गई ।
- अथाह ज्ञान है आज वर्तमान में संर्पूण द्वादशांग की एक बूंद बराबर भी शास्त्र ज्ञान नहीं है और जो है उसे भी कोई पूर्ण रुपेण धारण नहीं कर सकता ऐसे चिंतन में डूबने वाला कभी ज्ञानमद नहीं करता ।
- ज्ञानी सोचता है जो वर्तमान में दिख रहा है वह सब क्षायोपशमिक ज्ञान है तथा क्षायोपशमिक ज्ञान कभी एक सा नहीं रहता घटता - बढ़ता रहता है अत: किसका अभिमान करुँ ।

" पूजा - मद "

- लोक में प्राप्त पूजा - प्रतिष्ठा , आदर सम्मान, यशकीर्ति अथवा राजा- मंत्री, सेठ - साहूकार आदि रुप पदों का घमण्ड करना पूजा मद है ।
- जो यह कहता है कि मेरे समान प्रतिष्ठा व सम्मान इस लोक में किसी का नहीं, जहाँ जाता हूँ लोग चरणों में आ जाते हैं ऐसे अभिमान रुप परिणामों को करने वाले के सम्मान - प्रतिष्ठा शीघ्र विनाश को प्राप्त हो जाते हैं ।
- पूजा का मद करने वाले की यश: कीर्ति, अयश: कीर्ति में बदल जाती है ।
- पूजा का मद करने वाला स्वप्रशंसा के निमित्त नीच गोत्र का भी बंध करता है ।
- पूजा का मद करने वाले के पास से सारे सद्गुण पलायन कर जाते हैं तथा दोष उसे अपना निवास स्थान बना लेते हैं ।
- पूजा का मद से सम्यग्दर्शन की हानि होती है ।
- यह मद आत्मा के पतन का कारण है ।
- पूजा का मद करने वाला परलोक में दर-दर का भिखारी बनता है, जहाँ भी जाता है वह निंदा व तिरस्कार को प्राप्त होता है ।
- पूजा का मद का धारी शराबी की तरह उन्मत्त होता हुआ अपने निज आत्म धर्म को खो बैठता है ।
- पूजा का मद के अभिमान में आकर व्यक्ति अपने से निम्न पदों में स्थित व्यक्तियों का तिरस्कार करता है फलस्वरुप परभव स्वयं उनके द्वारा तिरस्कार को प्राप्त होता है ।
- पूजा का मद को करने वाला पूज्यता को खो बैठता है ।

जाति - कुल मद

- पितृ के पक्ष का मद करना कुल मद है।
- माता के पक्ष का मद करना जाति मद है।
- दूसरों को नीचा दिखाने वाली विभिन्न कल्पनायें करना कुल मद है।
- उच्च कुल या जाति मिलना पूर्व पुण्य प्रकृतियों का उदय है।
- यदि हमने पुण्योदय पर मद किया तो निश्चित ही पापास्त्रव होगा, जिससे नीच कुल, जाति का प्राप्ति होगी।
- यह मद पुण्य को पाप में परिवर्तित कर देता है।
- मद से रहित होना पाप को पुण्य में परिवर्तित कर देना है।
- आत्मा निश्चय नय की दृष्टि से गोत्र कर्म से रहित है ऐसा विचारता हुआ ज्ञानी कभी भी कुल या जाति का मद नहीं करता।
- ज्ञानी चिंतन करता है ऐसा कौन सा छोटे से छोटा कुल व जाति नहीं है जिसमें मैंने जन्म न लिया हो उच्च से उच्च कुल में भी जन्म लिया। फिर अभिमान किस बात का।
- जिसे आत्म ज्ञान नहीं ऐसा बहिरात्मा मिथ्यादृष्टि ही जाति - कुल आदि का अभिमान करता है।

" बल - मद "

- शक्ति अथवा सामर्थ्य का घमंड करना बल मद है मैं कोटि भट हूँ, शिलाभट हूँ। अनेकों को क्षण भर में पछाड़ सकता हूँ यह बल मद है।
- मनोबल, वचनबल, कायबल, धनबल, जनबल, सैन्य बल, अस्त्र - शस्त्र बल, मित्रबल आदि अनेक प्रकार के बल हैं, अतः बलमद के भी अनेक भेद हो जाते हैं।
- उपर्युक्त प्रकार के बलों को पाकर जो अभिमान / मद करता है, तो उसके ये बल शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं।
- कभी भी शारीरिक आदि शक्तियों को पाकर उनका दुरुपयोग नहीं करना चाहिए अन्यथा पुनः ये बल प्राप्त नहीं होते।
- जो शक्ति को पाकर दूसरों को डराता धमकाता है लोगों से पैसे ऐंठता है, लोगों पर अत्याचार करता है। बल मद में आकर दूसरों के प्राणों का हरण करता है यह परभव में अति दुर्बल / क्षीण काय को प्राप्त होता है।
- जो व्यक्ति बल या शक्ति को पाकर भी उस शक्ति का उपयोग दूसरों के उपकारार्थ करता है, लोगों को अभय देता है उनके कठिन कार्यों को आसान कर देता है वह परभव में दुगने, चौगने बलिष्ठ शरीर को प्राप्त करता है।
- अपनी शक्ति का उपयोग जो मासोपवासादि घोर तपश्चरण में करते हैं वे ही एक दिन वज्रवृषभ नाराच जैसे श्रेष्ठ उत्तम संहनन को प्राप्त करते हैं तथा कर्मों का क्षय कर निर्वाण की यात्रा करते हैं।
- बल - मद में मस्त हुआ व्यक्ति एक दिन अवश्य ही अपने से बलिष्ठ किसी अन्य बलशाली के द्वारा परास्त किया जाता है।

"ऐश्वर्य मद" अथवा "ऋद्धि मद"

- अणिमादिक ऋद्धि अथवा लौकिक विभूति ऐश्वर्य और पुत्र - पौत्रादिक संपत्ति को प्राप्त करके घमण्ड करना ऋद्धिमद / ऐश्वर्य मद है।
- मेरे तो अनेक पौत्र - पौत्रियाँ हैं , भरा - पूरा संपन्न परिवार है लोक में मुझसे सुखी तो कोई है ही नहीं, इस प्रकार का अभिमान दिखाते हुए दूसरे को नीचा दिखाना ऐश्वर्य मद है।
- ऐश्वर्य का मद करने वाला दुर्गति का पात्र बनता है।
- कोई मुनि ऋद्धि आदि के प्रगट हो जाने पर यदि ऐसा कहे ये अन्य साधक हीन चारित्र वाले हैं मैं उत्कृष्ट चारित्रवान हूँ क्योंकि मेरे ऋद्धियाँ प्रकट हो गई है ऐसा अभिमान करने वाला अपने सम्यक्त्व रुप रत्न को खो देता है।
- ऐसा साधक अपनी तपस्या के वास्तविक व समीचीन फल को प्राप्त नहीं कर पाता।
- ऐश्वर्य मद को करता हुआ जो जीव पर को तिरस्कृत करता है वह जन्मान्तरों में स्वयं दूसरों के द्वारा तिरस्कार को प्राप्त होता है।
- ऐश्वर्य का मद करने से सारा ऐश्वर्य पल भर में कपूर की भाँति उड़ जाता है जिसे पुनः पाना अति दुर्लभ होता है।
- ज्ञानी कभी ऐश्वर्य का मद नहीं करते क्योंकि वे जानते हैं कि यह ऐश्वर्य आदिक मेरे निज आत्म तत्व का वास्तविक स्वरुप नहीं है।
- ऐश्वर्य का मद करने वाला शीघ्र ही एश्वर्य विहीन हो जाता है तथा दुर्गति को जाता है।
- ऐश्वर्य मद करने वाले के मित्र नहीं होते यदि होते भी हैं तो वे शीघ्र ही उसका साथ छोड़ देते हैं।

तपमद

- तप का मद भी नहीं होना चाहिए।
- आप तप कर रहे हैं, कि हमारे कर्मों का क्षय हो लेकिन आपके तप में मद रुपी गंध आ गयी तो वह तप सच्चा तप नहीं कहलायेगा। वह आपको अपने लक्ष्य से च्युत कर देगा।
- आपने तप अपने कर्म क्षय के उद्देश्य से किया था परन्तु कषाय के कारण कर्म क्षय के स्थान पर बंध अधिक हुआ, तो वह तप तप न होकर कुतप हो गया।
- मद के साथ किया तप विष कुंभ के समान है।
- यदि मद है तो वह अकाम निर्जरा है जो आत्मा - अनात्मा के ज्ञान बिना मिथ्यादृष्टि जीव को होती है।
- यदि मद है तो वह तप न रहकर पत हो गया और जो पतन का कारण हो वह कुतप है।
- तप संसार भ्रमण छेद का कारण है।
- तप और मद एक साथ नहीं हो सकते।
- तप अंतरंग ज्ञान चक्षुओं को छू लेने की अवस्था है।
- तप आत्म कल्याण की एक सीढ़ी है, साधन है।
- मद के साथ तप का होना शरीर को कष्ट देना मात्र है।
- समता बिना किया तप, तप नही आतप है और आतप ही नहीं आफत है।
- समीचान तप से ही संपूर्ण कर्म क्षय को प्राप्त होते है।

रूप (शरीर) मद

- शरीर के ऊपर मद नहीं करना चाहिए ।
- शरीर का मद मोक्षमार्ग एक साथ संभव नही है ।
- शरीर का मद करने वाले व्यक्ति कभी आत्मज्ञ नहीं हो सकते हैं ।
- जब शरीर को अपना मानोगे, उसकी सुरक्षा में अपना उपयोग केन्द्रित करोगे तब ही उस पर मद होता है, क्योंकि मद ममत्व के बिना नहीं हो सकता है ।
- जहाँ ममत्व है वहाँ भेद - विज्ञान नहीं हो सकता है ।
- जो भेद विज्ञानी होता है, वह कभी भी शरीर पर घमंड नहीं करता, तथा दूसरे के शरीर को देखकर ग्लानि नहीं करता है ।
- शरीर पर मद करने वाला व्यक्ति कभी अपना कल्याण नहीं कर सकता है । वह केवल शरीर का ही पोषण करता है ।
- जिसकी दृष्टि जहाँ होती है, उसका उपयोग भी वही होता है और जिसका उपयोग जहाँ होता है वह वही पाता है जिसकी दृष्टि शरीर पर है सुंदर रुप पर है वह अनादि काल तक इन शरीर को ही पाता रहेगा, कभी भी विदेही अवस्था को प्राप्त नहीं कर पायेगा ।
- शरीर से विरक्ति ही आत्मा की उन्नति है ।
- शरीर ही सम्पूर्ण महापापों का मूल है ।

- व्यक्ति जितना भी दुराचार, अन्याय, अनीति जन्य पाप करता है - मात्र एक शरीर के कारण ।
- शरीर पापों का जनक है, जिसमें आसक्त होकर यह प्राणी नाना प्रकार के अत्याचार करके और पाप की गठरी बाँधकर, पतन के गर्त में समा जाता है ।
- शरीर सारे अपवित्र पदार्थों का पिटारा है ।
- शरीर संपूर्ण गंदगी का भंडार है, जिसके संसर्ग से पवित्र पदार्थ भी अपवित्र हो जाते हैं ।
- शरीर का मूलत: स्वभाव दुर्जन है ।
- अज्ञानी, मोह तथा विषयान्ध प्राणी इस शरीर में आसक्त होकर नरक - निगोद के महादुख दायी कष्टों को भोगता है ।
- शरीर श्रृंगार ही तुम्हें महाकष्टों के गर्त में ले जायेगा ।
- जो शरीर को अपना मानकर उसे सजाता है, वह नर मिथ्या दृष्टि है ।
- व्यक्ति सारे पाप इस शरीर के कारण ही करता है न होगा बांस न बजेगी बाँसुरी, ऐसा सोच ज्ञानी जन अपने शरीर को तपश्चरण में लगा देते है ।

जुआ खेलना

- जुआ सभी व्यसनों का शिरोमणि एवं मानवता का प्रथम शत्रु है ।
- जुआ से मात्र आत्मा का ही पतन होता है ऐसा नहीं है, परन्तु कुटुम्ब, समाज एवं राष्ट्र में भयानक दुराचार का संचार होता है ।
- जुआ से मनुष्य का चरित्र ही नहीं, अपितु अर्थ (धन) भी नष्ट हो जाता है ।
- जुआ का ही ये साक्षात् परिणाम है कि इसके कारण हरे -भरे बड़े - बड़े घर उजड़ गये ।
- जुए की आँधी में विवेकी, सत्यवादी और नीतिज्ञ भी मार्ग से विचलित हो जाते हैं ।
- जुआ मनुष्य को झूँठ चोरी अथवा बुरे कार्यों के कराने में लगा सकता है ।
- जुए से कितना बड़ा धन क्यों न जमा कर लो, किन्तु वह सुरक्षित नहीं रह सकता है ।
- जुआ चिन्ताग्नि की एक चिनगारी है, जो मनुष्य को दिन - रात जलाती है ।
- जुआ खेलने वाला आज ऐसा कौन श्रीपति है जो जन प्रतिष्ठित एवं ऐश्वर्यशाली बना रहा हो ।
- जुआरियों की समाज में कोई इज्जत नहीं होती है ।
- जुआरियों का न आदर होता है न विश्वास अपितु बड़ी दुर्दशा और अनादर ही होता है ।
- जुआरी रुपया, पैसा, सोना आदि ही क्या अपने वस्त्र, स्त्री तक बेच डालता है ।

- जुआरी दर - दर की ठोकर खाते हुए यत्र - तत्र विचरण करते हैं, किन्तु कहीं भी अपना पेट नहीं भर पाते हैं ।
- जुआ आत्मा के महान पतन का कारण है ।
- जुआ मानवता का सबसे बड़ा कलंक है ।
- जुआ का परिणाम महा भयंकर है ।
- जुआ के कारण ही पाण्डवों को अपने राज्य से हाथ धोकर वनों में भटकना पड़ा ।
- अगर आँख खोलकर देखें तो पता चलता है कि आज जुआरियों की क्या दुर्दशा है ? रात - दिन हाय - हाय की श्वासों में, प्राण निकले जा रहे हैं ।
- जुआ एक ऐसा पाप है, जो सर्वप्रथम प्राणियों को लुभाता है और आगामी चाहना में उसे जकड़ लेता है जिसमें प्राणी इतना विध जाता है कि फिर उसे छोड़ना चाहे तो भी नहीं छोड़ पाता है ।
- यह व्यसन जुआरियों की मति भ्रष्ट कर देता है ।
- जुआरी क्या - क्या पाप नहीं करता अर्थात् कोई भी पाप नहीं है जिसे जुआरी नहीं करता हो ।
- जुआरी एक - दूसरे पर सदा संशयवान रहा करते हैं ।
- जुआ में प्राप्त सम्पदा भी उसके लिये प्राण घातक बन जाती है ।
- जुआ संसार भर में प्रसिद्ध कुव्यसन है ।
- जुआरी प्राणी जब सम्पूर्ण धन हार जाता है तब अन्याय से जुआ खेलना, धन कमाना आदि निन्दनीय कार्य करता है और जुआ में विजयी प्राणियों पर हमला कर देता है ।

मांस खाना

- मांस भक्षण हिंसा की प्रथम सीढ़ी है और हिंसा ही सबसे बड़ा पाप है ।
- मांस एक उत्तेजनात्मक पदार्थ है, जिससे इन्द्रियां उच्छंखल बनती हैं ।
- मांस भक्षण निर्दयता की आधार शिला है ।
- मांस खाने में बड़ी से बड़ी हिंसायें होती हैं ।
- मांस तैयार करने वाले की अपेक्षा मांस खाने वाला महा कसाई है ।
- मांस भक्षण आत्म निर्बलता का सूचक है ।
- आत्मोन्नति के लिये मांस सर्वथा बाधक होने से त्याज्य है ।
- मांसाहारी को धर्म साधना अणु बराबर भी नहीं हो सकती ।
- किसी भी धर्म गुरुओं नें मांस खाने की आज्ञा नहीं दी, अपितु रोका है ।
- जो मांस भक्षण को, मांस खाने को धर्म कहते हैं वे पवित्र धर्म पर कलंक लगाते हैं ।
- मांस भक्षी का कभी कल्याण नहीं हुआ है न कभी होगा ।
- महापुरुषों ने कभी भी मांस नहीं खाया इसलिये उन्हें महानता प्राप्त हुई ।
- मांस असाध्य रोगों की जननी एवं क्रूरता का जनक है ।

- मांस भक्षी को अपने कल्याण का भी ध्यान नहीं हो सकता ।
- मांस खाने वाले को एक ही पाप का फल भोगना पड़ेगा, ऐसा नहीं, किन्तु विश्व के समस्त पापों का कठोर प्रायश्चित एक मात्र मांस खाने वाले को भोगना पड़ेगा ।
- मांस का संसर्ग (गंध, स्पर्श) भी जब अनेकों रोगों को जन्म देता है तो क्या मांस भक्षण बड़े - बड़े अनेक रोगों को उत्पन्न नहीं करता अर्थात् अवश्य करता है - यह प्रत्यक्ष दिखता है ।
- जिसका मांस खा रहे हैं कल वो ही प्राणी आपका मांस खायेगा ।
- कौन कहता है अण्डे शाकाहारी हैं क्या वे मुर्गी के पेट से उत्पन्न नहीं होते, उसमें रक्त, मांस, चर्बी आदि का अंश नहीं होता । यदि होता है तो फिर शाकाहारी कैसे ?
- अण्डा खाना, शराब पीना, शहद खाना आदि मांसाहार है ।
- मांस खाने का परिणाम नरकों की असहनीय वेदना के समय में ही याद आयेगा ।
- जो मांस घृणा को उत्पन्न करता है, मृग आदि प्राणियों के घात से उत्पन्न होता है अपवित्र है, कृमि आदि क्षुद्र कीड़ो का स्थान है, जिसकी उत्पत्ति निंदनीय है तथा महापुरुष जिसे न तो हाथों से स्पर्श करते है तथा न ही आंखों से देखना पसंद करते है वह मांस खाने योग्य है ऐसा कहना भी सज्जनों के लिए निंदाजनक है ऐसे मांस को जो खाता है उसकी क्या दुर्गति होगी यह हम कह नहीं सकते ?

शराब पीना

- शराब एक ऐसा व्यसन है, जिससे प्राणी अपना ज्ञान और चेतना खो बैठता है।
- शराब नैतिकता के प्रति महान अपराध है।
- शराब प्राणियों को घृणास्पद बना देती है एवं हर प्राणी उससे घृणा करते हैं।
- शराब, व्यक्ति के चारित्र एवं यश को क्षण भर में विध्वंस कर देती है।
- शराब का परिणाम अत्यंत रोमांच कारक एवं हृदय को क्षुब्ध करने वाला है।
- शराब शरीर की सामर्थ्य को समाप्त कर देती है।
- शराब से प्राणी अपना हिताहित भूल जाता है।
- शराब के कारण आदमी बड़े से बड़ा अत्याचार कर डालता है।
- शराब पीने से प्राणी की स्मरण शक्ति क्षीण हो जाती है।
- शराब के नशे की तीव्रता में शराबी को कुछ भी होश - हवाश नहीं रहता और उसे कर्तव्य - अकर्तव्य का विवेक नहीं रहता है।
- शराब के नशे में प्राणी स्वयं के अथवा दूसरे के प्राणों तक का विनाश कर देता है।
- शराब आर्थिक क्षति पहुंचाती है।
- हरे - भरे घरों को बर्बाद करने में शराब प्रधान कारण होती है।
- शराब व्यक्ति को दरिद्रता के गर्त में गिरा देती है।

- शराब व्यक्ति के रुप को विद्रूप कर देती है।
- शराब सुरीली आवाज को ध्वस्त कर देती है।
- शराब द्वारा प्राणी की चाल अस्त - व्यस्त हो जाती है।
- मानसिक दु:ख प्रतिपल शराबी के पीछे दौड़ता है, जैसे वह उसकी छाया हो।
- शराब पीने से इस लोक में निंदा, तिरस्कार एवं मारपीट के दु:ख भोगने पड़ते हैं और परलोक में नरक, तिर्यंच आदि के दु:ख भोगने पड़ते हैं।
- शराबी मनुष्य न तो धर्म कार्य कर सकता है, न अर्थोपार्जन कर सकता है न ही यथेच्छ भोग ही भोग सकता है इस प्रकार वह इस भव में सभी पुरुषार्थो से रहित होता है।
- परभव में वह मद्यजनित दोषों से नरकादि दुर्गतियों में पड़कर असह्यदु:ख को भी भोगता है। इसी विचार से बुद्धिमान मनुष्य उसका सदा के लिए परित्याग करते हैं।
- मद्यपायी जन निर्लज्ज होकर माता को ही पतिन समझ कर निन्दनीय चेष्टाएँ करते हैं।
- मद्यपायी रास्तों में पड़े रहते है कुत्ता भी उसके मुख में मूत्र कर जाता है तो भी वे उसे मधुर बतलाकर पीते रहते है।

वेश्यागमन

- वेश्या गमन भयंकर सामाजिक अपराध है, जिसके कारण समाज से तिरस्कृत होना पड़ता है ।
- वेश्या गमन मनुष्य के नैतिक पतन की प्रथम सूचना है ।
- वेश्या गमन से मनुष्य नरक के प्रथम द्वार पर प्रस्तुत होता है ।
- वेश्या गमन से लोक निंदा तथा यश का विनाश होता है ।
- वेश्या गमन का अर्थ चारित्र भ्रष्टता है । चारित्र भ्रष्टता ही अपनी इज्जत की समापन प्रक्रिया है ।
- वेश्या गमन जुगुप्सा (ग्लानि) की प्रथम अवस्था है ।
- वेश्या गमन धर्म विनाश की आधार शिला है ।
- वेश्या गमन करना ही अपनी मर्यादा को तोड़ना है ।
- वेश्या गमन ही अशांति का मूल स्त्रोत है ।
- वेश्या गमन करना ही अपने आप को संकट में डालना है ।
- वेश्या गमन का ही परिणाम है कि चारुदत्त को विष्टा में गिरना पड़ा ।
- वेश्या व्यसन एक ऐसा व्यसन है कि जिससे प्राणी का सर्वस्व विनाश हो जाता है ।
- वेश्या व्यसन कंगाल रुप अवस्था को प्रदान कर दर - दर की ठोकरें खिलाता है ।
- एक बार भी किया गया वेश्या व्यसन जीवन भर के लिये चिंता का शूल बन जाता है जो बार - बार चुभता रहता है ।

- वेश्यागामी प्राणी सदा भयशील रहता है ।
- वेश्यागामी प्राणी का उपयोग धर्म में कहाँ अपितु वेश्या आराधना में रहता है ।
- एक व्यसन को छिपाने के लिए अनेक झूँठ बोलना पड़ते हैं ।
- मन में अत्यंत कुटिलता को धारण करने वाली जो पापिष्ठ वेश्याएँ - मांस को खाती है, मद्य को पीती है, असत्य वचन को बोलती है, केवल धन प्राप्ति के लिए ही स्नेह करती है, धन व प्रतिष्ठा इन दोनों को ही नष्ट करती हैं, तथा जो वेश्याएँ नीच परुषों की भी लार को प्रीति है उन वेश्याओं को छोड़कर दूसरा कोई नरक नहीं है अर्थात् वे वेश्याएँ नरक गति प्राप्ति की कारण हैं ।
- जो वेश्याएँ धोबी के कपड़े धोने की शिला के समान है तथा जिनका आचरण कुत्ते के कपाल की तरह है ऐसी वेश्याओं की यदि संगति की जाती है तो इस भव में धन, प्रतिष्ठा का नाश होता है तथा परभव में नरकादि का महान कष्ट भोगना पड़ता है । अतएव इसभव व परभव में आत्म कल्याण को चाहने वाले सत्पुरुषों को वेश्यागमन का त्याग करना चाहिए ।

शिकार खेलना

- विश्व सुरक्षा का मूल मंत्र शिकार त्याग है।
- शिकार क्रूरता की प्रथम सीढ़ी है।
- शिकार निरापराध प्राणियों पर सबसे बड़ा अपराध है।
- शिकार हिंसा की चरमातीत अवस्था है।
- निर्बल मासूम प्राणियों का शिकार करने में आपकी क्या बहादुरी और क्या वीरता ?
- जिसका आज आप शिकार कर रहे हैं क्या कल वह तुम्हें छोड़ेगा ?
- पशु - पक्षियों का शिकार कर आप उनके आपसी संबंधों को क्यों तोड़ते हैं ?
- शिकारी को आत्म शांति कहाँ मिल सकती है अर्थात् कहीं - नहीं।
- शिकार करना स्वयं को शिकार बनाना है।
- शिकारी के हृदय में करुणा नहीं रह सकती है।
- शिकारी सदा खून का प्यासा रहता है।
- शिकार करना ही पशु - पक्षियों के प्रति सबसे बड़ा अन्याय है।
- जीवन दान के समान कोई धर्म नहीं हैं और जीवन हरण के समान कोई दूसरा पाप नहीं है।
- शिकारी सदा भिखारीवत् होता है।
- सम्पूर्ण हिंसा का यदि आप त्याग नहीं कर सकते, तो कम से कम शिकार करना छोड़ दो।

चोरी करना

- चोरी मानव जीवन का सबसे बड़ा अपराध है।
- चोरी करना अपनी इज्जत को खुले आम बेचना है।
- चोरी दरिद्रता की प्रदर्शक एवं निकृष्टता की पहचान है।
- चोरी करना अपनी मृत्यु को साक्षात् आमंत्रित करना है।
- चोरी अविश्वास की जननी है।
- चोरी का परिणाम क्रंदन (रोना) है।
- चोरी का दाग जीवन भर में भी नहीं धुल सकता, चाहे आप बड़े से बड़ा दान या अन्य धर्म कार्य क्यों न कर लें।
- चोरी चाहे खुले आम करो या लुकेछिपे करो, किन्तु बंध तो होगा ही।
- चोरी का धन धर्म में लगाना, धर्म को भी मलिन करना है।
- चोरी से आगत द्रव्य का दान करना दान नहीं है।
- चोर, भिखारी से भी गया बीता होता है।
- चोर कितना भी बलवान क्यों न हो जाए किन्तु बच्चों तक से शंकाशील रहता हैं।
- चोर कितना भी ईमानदार क्यों न हो जाए तो भी लोग उससे सतर्क (सावधान) रहते है।
- चोर ,राज्य दण्ड से फिर भी बच सकता है किन्तु कर्म दण्ड से कभी नहीं बच सकता।
- चोर को क्षण भर भी सुख - शांति की सांस नहीं मिल सकती।
- चोर की गूँढ़ दशा को समझना बड़ा कठिन है।

- चोर का कभी पेट नहीं भर सकता ।
- जो प्राणी चोर बाजारी करते हैं, रिश्वत लेते हैं या कर चुराते हैं, वे भी चोर हैं ।
- अपने कर्तव्यों से हीन कार्य करना चोरी है ।
- चोरी स्वयं करना, कराना, करने वालों को सलाह देना अथवा उक्त सभी की सराहना करना या उसके इस कृत्य को देख प्रसन्न होना इत्यादि सभी समान फल के भागी दार होते हैं ।
- जो मनुष्य धनादि के कमाने में अनेक प्रपंचों को रचकर दूसरों को ठगा करते हैं वे निश्चय से उस पाप के प्रभाव से दूसरों के सामने ही नरक में जाते है । कारण यह है कि प्राणियों में प्राण धन के निमित्त से ही ठहरते है, धन के नष्ट हो जाने पर मनुष्यों को जितना अधिक दु:ख होता है उतना प्राय: उसे मरते समय में भी नहीं होता ।
- चोरी करने वाला इहभव में भी अपयश निंदा को प्राप्त होता है तथा परभव में तिर्यंच, नरकादि दुर्गतियो के भयंकर कष्टों को सहन करता है ।
- जो व्यक्ति एक बार चोरी कर लेता है वह हमेशा के लिए दूसरों की नजरों से गिर जाता है फिर कोई उस पर कभी भी विश्वास नही करता ।

" परस्त्री सेवन "

- परस्त्री में अनुराग बुद्धि रखने वाले व्यक्ति को इस जन्म में चिंता, आकुलता, भय, द्वेषभाव, बुद्धि का विनाश, अत्यन्त संताप, भ्रांति, भूख, प्यास, आघात, रोग वेदना और मरण रुप दु:ख प्राप्त होते हैं ।
- जो परस्त्री सेवन करता है वह परलोक में नरकगति के प्राप्त होने पर अग्नि में तपायी हुई लोहमयी स्त्रियों के आलिंगन से चिरकाल तक बहुत दु:ख प्राप्त करता है ।
- जिस पौरुष आदि के होने पर भी लोगों का व्यामोह को प्राप्त हुआ मन मर्यादा का उल्लंघन करके स्वप्न में भी परधन एवं परस्त्रियों में आसक्त होता है उस पौरूष को धिक्कार है ।
- जो बहुत दु:ख को देने वाला है, मित्रों के बीच हंसी कराने वाला है, दुर्जनों को प्रिय है और सज्जन पुरुषों के लिए शोचनीय है ऐसा निन्दित परस्त्री समागम का सुख जिसने प्राप्त किया है उसने अपने आपको दु:ख दायक नरक में, धन को राजा में, प्राण तराजु पर, कुल निंदा में, दीनता हृदय में और अपकीर्ति तीनों लोको में स्थापित की है ।
- काम से पीड़ित जिस दुर्बुद्धि मनुष्य ने परस्त्री समूह का उपभोग किया है उसने संसार में अपनी अकीर्ति की भेरी दी है । गोत्र पर स्याही का ब्रश फेरा है, चारित्र को जलाञ्जलि दी है, गुण समूह रुपी ग्राम में दावानल लगाया है, समस्त आपत्तियों को आमंत्रण दिया है और मोक्ष नगर के द्वार पर मजबूत किबाड़ लगाया है ।
- परस्त्री सेवन अपने कृत्य के प्रकट होने पर अपनी स्वस्त्री व आत्मीय जनों का विश्वास पात्र नहीं रहता ।

- परस्त्री सेवन दोषों की खान है, गुणों को नाश करने वाला, पाप का निज बंधु है और यही बड़ी - बड़ी आपत्तियों का संगम कराने वाला है ।
- परस्त्री सेवी हिताहित के विवेक से शून्य हो जाता है ।
- नरक रुपी गड्ढे में पटकने वाले, अत्यन्त भयानक परस्त्री सेवन से मानव दुष्ट प्रवृत्ति वाला होता हुआ, धर्मामृत के पान से वंचित रह जाता है ।
- परस्त्री सेवी का धन, बल, बुद्धि, वैभव, ऐश्वर्य सब कुछ नाश को प्राप्त हो जाता है ।
- जैसे शराबी को शराब का नशा होता है, जुआरी को जुए का, उसी प्रकार यह परस्त्री सेवन करने वाले को काम का नशा होता है ।
- जिस प्रकार अग्नि को तेल से बुझाने की चेष्टा मूर्खता है क्योंकि तेल से कभी अग्नि बुझती नहीं, अपितु और अधिक भभकने लगती है । उसी प्रकार परस्त्रीसेवी यदि परस्त्री के सेवन से अपनी कामवासना को शांत करना चाहे तो उसकी यह चेष्टा उन्मत्त पुरुष की तरह व्यर्थ है ।
- परस्त्री सेवी तिल मात्र मिथ्या अल्प सुख पाने के लिए समीचीन धर्म की शरण को प्राप्त नहीं कर पाता तथा परलोक में मेरु के समान दुःखों को प्राप्त करता है ।
- परस्त्री सेवी सर्वत्र घृणा, निंदा व तिरस्कार का ही पात्र होता है ।
- परस्त्री लंपटी की सूरत को देखना भी सज्जन पुरुष अनर्थकारी मानते हैं ।
- परस्त्री सेवी कैंसर, एड्स जैसे भयानक जान लेवा रोगों का शिकार होकर कुत्ते की मौत मरता है ।

१. " दर्शन - विशुद्धि भावना "

- पच्चीस मल दोषों से रहित, तथा बढ़ती हुई विशुद्धि के साथ जो सम्यक्त्व रुप परिणाम हैं वह दर्शन विशुद्धि है । अथवा विशिष्ट विशुद्ध परिणामों के द्वारा सम्यक्त्व (रुप परिणामों) को और अधिक सुदृढ़ बनाना दर्शन विशुद्धि भावना है ।
- जिसने एक दर्शन विशुद्धि भावना को प्राप्त कर लिया शेष पन्द्रह भावनाएँ स्वयमेव उसके पास आ जाती हैं । जिस प्रकार राजा को जीत लेने पर संपूर्ण सेना स्वयमेव विजित हो जाती है ।
- दर्शन के साथ लगा विशुद्धि विशेषण महत्वशाली है क्योंकि मात्र सम्यग्दर्शन तीर्थंकर प्रकृति के आस्त्रव का हेतु नहीं अपितु विशुद्धि को प्राप्त निर्मल सम्यक्त्व तीर्थंकर प्रकृति का बंध करता है ।
- जिस प्रकार एक मूर्तिकार पाषाण खंड में अपनी पैनी - छैनी से चोट देता है और अनवरत् उसकी वह टंकार, वह चोट पाषाण सहन करता है जिससे उसकी सारी खोटें हट जाती है और पाषाण मूर्ति का रुप ले लेता है । उसी प्रकार गुरु भी शिष्य रुप पाषाण पर सदुपदेश रुपी पैनी - छैनी के प्रहार से उसके अंदर छिपी मिथ्यात्व रुपी खोटों को दूर कर सम्यग्दर्शन से विशुद्ध कर देते हैं ।
- संवेग, निर्वेग, आत्म निंदा, गर्हा, उपशम, भक्ति, वात्सल्य, अनुकंपा ये सम्यक्त्व के आठ गुण हैं ।
- जैसे सूर्य गहन अंधकार को, वायु मेघ को, अग्नि विशाल वन को और वज्र पर्वत को नष्ट कर देता है, उसी प्रकार सम्यक्त्व कर्मों को नष्ट कर देता है ।

- पुत्र को पालने वाली धाय माँ पुत्र पर आसक्त नहीं होती, व्यभिचारिणी स्त्री पति पर आसक्त नहीं होती, कमल में जल बिंदु आसक्त नहीं होती, उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि जीव विषय भोगों को भोगते हुए भी उसमें आसक्त न होने से पाप का भागी नहीं होता।
- निः कांक्षित पुण्य प्रतिकूलता में साथ देता है।
- सम्यग्दृष्टि के नियम से ज्ञान और वैराग्य शक्ति होती है।
- जिसके हृदय में सम्यक्त्व रुपी जल का प्रवाह निरंतर प्रवाहित रहता है उसका कर्मरूपी बालू का बाँध बद्ध होने पर भी नष्ट हो जाता है।
- जो उत्तम गुणों को ग्रहण करने में तत्पर रहता है, उत्तम साधुओं की विनय करता है, साधर्मी जनों से अनुराग करता है, वह उत्कृष्ट सम्यग्दृष्टि है।
- जिस जीव के सम्यग्दर्शन होता है उसके हाथ में चिंतामणि रत्न है, उसके घर में कल्पवृक्ष है, कामधेनु उसकी अनुगामिनी है।
- सम्यक्त्व रत्नों में महारत्न है, समस्त योगों में उत्तम योग है, ऋद्धियों में महाऋद्धि है, यह सम्यक्त्व समस्त सिद्धि को करने वाला है।
- सम्यग्दृष्टि जीव तीनों भुवनों में जहाँ कहीं भी हो पूज्य होता है लेकिन सम्यग्दर्शन के बिना साधु पग-पग पर निंदनीय होता है।
- जिस सम्यक्त्व के द्वारा निरंतर अभ्युदय आदि की कल्याण परंपरा प्राप्त होती है , उस सम्यक्त्व रत्न का मूल्य लोक में नहीं है अर्थात् वह तो अमूल्य है, उसका मूल्यांकन हो नहीं सकता।

- जो दुर्गति के द्वारों को बंद करने वाला है, समस्त संपदाओं का भण्डार है और मोक्ष संबंधी सुखों को करने वाला है ऐसा सम्यग्दर्शन बहुत भारी पुण्य से प्राप्त होता है।
- सत्पुरुषों को जब तक सम्यक्त्व की प्राप्ति नहीं होती तभी तक उनका संसार सागर भयंकर रहता है, तभी तक उनकी जन्म सन्तति चलती है और तभी तक उन्हें अनेक दुःख प्राप्त होते रहते हैं।
- सम्यक् श्रद्धा के अभाव में की गई सारी क्रियायें मात्र बाह्य आडम्बर है उससे आत्मा का कुछ भी हित सिद्ध नहीं होता है।
- श्रद्धा जितनी निर्मल होती है परिणाम भी उतने - उतने बढ़ती हुई विशुद्धि को लिये हुए होते है और वे विशुद्ध परिणाम ही कर्म क्षय का हेतु बनते है अतः हमें सदैव श्रद्धा को निर्मल करने का प्रयत्न करना चाहिए।
- एक दर्शन विशुद्धि भावना ही भव से पार कर देती है।
- समुद्र में यदि राई का दाना गिर जाये तो उसे खोजना फिर भी संभव है परंतु जो एक बार सम्यक् श्रद्धा से चलायमान हो गया उसका पुनः श्रद्धा को प्राप्त करना अति दुर्लभ है।

आस्था

- आस्था रुपी दीपक जलने पर ही परमात्मा नजर आता है ।
- आस्था रुपी प्रकाश आते ही, अनास्था रुपी तिमिर नष्ट हो जाता है ।
- आस्था के बिना मुक्ति का महत्व नहीं है ।
- आस्था के बिना भक्ति, भक्ति नहीं सिर्फ दिखावा है ।
- आस्था, भक्ति की जननी है ।
- आस्था से ही धर्म का प्रारंभ होता है ।
- आस्था से रहित मानव, मानव नहीं चलते - फिरते मुर्दे के सदृश हैं ।
- आस्था के बिना धर्म भारभूत होता है ।
- आस्था के बिना जीवन मंगलमय नहीं अमंगलकारी होता है।
- आस्था के बिना जीवन मंत्र हमारे जीवन को जीवन्त नहीं बना सकते हैं ।
- आस्था के बिना हम सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं कर सकते हैं ।
- आस्था के बिना सारे कार्य अधूरे हैं ।
- आस्था के बिना हम अपने लक्ष्य तक नहीं पहुँच सकते हैं ।
- आस्था से हर कार्य की सिद्धि हो जाया करती है ।
- आस्था के बिना हमारी पूजा, भक्ति निरर्थक है ।
- आस्था के साथ जो भी कार्य करना चाहे हर कार्य में उपलब्धियाँ प्राप्त होती हैं ।

सम्यग्दर्शन

- सम्यग्दर्शन, धर्म का मूल है ।
- जिस प्रकार शेरनी का दूध स्वर्ण पात्र में ही टिक सकता है, अन्य पात्रों में नहीं, उसी प्रकार सच्चे देव, शास्त्र, गुरु के वचन सम्यग्दृष्टि में ही टिक सकते हैं, मिथ्यादृष्टि में नहीं ।
- सम्यग्दृष्टि का मस्तिष्क कोई बाजार का श्री फल नहीं जिसे चाहे जहाँ भी फोड़ दिया जाये ।
- सम्यग्दृष्टि का मस्तिष्क सच्चे देव, शास्त्र, गुरु के लिये झुकता है, अन्य स्थानों पर नहीं ।
- सम्यग्दृष्टि का मस्तिष्क सच्चे देव, शास्त्र, गुरु की वाणी से भरा होता है ।
- सम्यग्दर्शन जन्म - मरण की परम्परा को समाप्त कर देता है ।
- सम्यग्दृष्टि की आस्था को आठ अंग रुपी कसौटी में कसा गया है ।
- जिस प्रकार तलवार पर पानी चढ़ जाने से वह उतरता नहीं वैसे ही आस्था पर निःशंकित अंग का पानी चढ़ जाने से, आस्था दोलायमान नहीं होती वही अकम्प आस्था कहलाती है जैसे जड़ के बिना वृक्ष नहीं हो सकता, वैसे ही सम्यग्दर्शन के बिना, धर्मरुपी वृक्ष फलीभूत नहीं हो सकता ।
- जिस प्रकार शरीर के ८ अंग होते हैं, वैसे ही सम्यग्दर्शन के भी आठ अंग होते हैं ।
- जैसे अंग विहीन व्यक्ति शोभायमान नहीं होता, वैसे ही अंग

विहीन सम्यग्दर्शन शोभायमान नहीं होता।

- अंगहीन व्यक्ति विकलांग कहलाता है। वह पूजा - प्रतिष्ठा कार्यों का अधिकारी नहीं होता बल्कि बाधक माना जाता है। वैसे ही विकलांग सम्यग्दर्शन, पारमार्थिकता की उपलब्धि नहीं करा सकता।
- आठ अंग सिर्फ चिंतन में नहीं, अपितु चर्या में आ जाना ही अंगसहित सम्यग्दर्शन कहलाता है।
- सम्यग्दृष्टि की आस्था अकम्प, अकाट्य होती है।
- अकम्प आस्था ही मोक्षमार्ग में उपलब्धि करा सकती है।
- जिस प्रकार अंक के बिना शून्य की कोई कीमत नहीं होती उसी प्रकार सम्यग्दर्शन के बिना संपूर्ण गुणों की कीमत नहीं होती है।
- सम्यग्दर्शन से सहित संपूर्ण गुण दस गुने कीमत को प्राप्त हो जाते हैं।
- संपूर्ण गुणों का शिरोमणि सम्यग्दर्शन है।
- सम्यग्दर्शन अंक की तरह है। जिस प्रकार शून्य के आगे अंक लगा दिया जाये तो उसकी कई गुनी कीमत बढ़ जाती है।
- जहाँ सम्यग्दर्शन का उदय है, वहाँ अनंत सागर का अंत समझो।
- संपूर्ण धर्मों का मूल सम्यग्दर्शन है।
- सम्यग्दर्शन से रहित ज्ञान - आचरण निरर्थक है।
- सम्यग्दर्शन से रहित मनुष्य, मनुष्य नहीं अपितु चलता - फिरता मुर्दा है।

- सम्यग्दर्शन के बिना व्यक्ति, पशु के तुल्य है।
- मिथ्या दर्शन अंतरंग कपाट को बंद कर देता है जबकि सम्यग्दर्शन उन कपाटों को खोल देता है।
- ज्ञान, चरित्र, तप और वीर्य की शोभा सम्यग्दर्शन से है।
- अनादि के बुरे संस्कारों को तोड़ने के लिए सम्यग्दर्शन वज्र का काम करता है जो कि मिथ्यात्व के टुकड़े - टुकड़े कर देता है।
- जहाँ सम्यग्दर्शन उत्पन्न हो जाता है वहाँ विपरीत बुद्धि का नाश हो जाता है। फिर हर कदम साहज का होता है पल एक नई खुशी आत्मिक सुख व शांति का होता है सम्यग्दृष्टी की आनंद अनुभूति अपूर्व ही होती है।
- जैसे भिखारी को लाख रुपये पड़े मिल जाए तो वह खुशी से नाचने लग जाता है वैसे ही दशा उस व्यक्ति की होती है जिसे सम्यक्त्व रुप अमूल्य रत्न प्राप्त हो गया है।

२. " विनय संपन्नता भावना "

- विनय का उद्‌गम आत्मा से होता है। जब तक अंतर आत्मा से विनय जाग्रत नहीं होती तब तक बाहर की विनय, विनय नहीं है। विनय का बाना तो ओढ़ा जा सकता है, बाहर से थोपी तो जा सकती है लेकिन वह विनय संपन्नता का रुप धारण नहीं कर सकती।
- विनय कर्मों के संवर और निर्जरा का प्रबल सेतु है।
- जिसके अंदर नम्रता होती है, उसके अंदर ऋजुता होती है, विनय भाव होता है और दुनियाँ उसका बाल भी बाका नहीं कर सकती ।
- अभिमान, विनय का बाधक हेतु है अत: पहले उसे दूर करना चाहिए।
- जब व्यक्ति के अंदर अभिमान होता है तो विनय का बीज अंकुरित नहीं हो पाता, विनय का पौधा तैयार नहीं हो पाता, विनय कभी पल्लवित एवं पुष्पित नहीं हो पाती। तथा वह कभी फलीभूत भी नहीं हो पाती।
- पांच प्रकार की विनय को मन, वचन व काय तीनों योगों से पालना चाहिए क्योंकि विनय रहित मनुष्य सुविहित मुक्ति को प्राप्त नहीं करते हैं।
- ज्ञान लाभ, आचार विशुद्ध और सम्यक् आराधना आदि की सिद्धि विनय से होती है और अंत में मोक्ष सुख भी इसी से मिलता है, अत: विनय, भाव अवश्य रखना चाहिए।
- सर्वसंग रहित गुरुओं की विनय भक्ति से विहीन शिष्यों की सर्व क्रियाएँ ऊसर भूमि में पड़े बीज के समान निष्फल हैं।

- विनय हीन मनुष्य का शास्त्र पढ़ना व्यर्थ है क्योंकि विद्या का फल विनय है और उसका फल स्वर्ग व मोक्ष की प्राप्ति है।
- 'विनय' को श्री जिनेन्द्र देव ने मोक्ष का द्वार कहा है।
- विनय धारण करने वाले मुनियों को अपने संघ में भी मान व आदर सत्कार मिलता है, बड़प्पन मिलता है, कीर्ति मिलती है, सब लोग उनकी स्तुति करते हैं तथा विनय से ही शुद्ध तपश्चरण और शुद्ध रत्नत्रय की प्राप्ति होती है।
- 'विनय' एक ऐसा सद्‌गुण है जो मानव जीवन रुपी बगिया को महका देता है। तथा अनेकानेक गुण रुपी पुष्पों को खिला देता है, प्रफुल्लित कर देता है।
- 'विनय' एक ऐसा वशीकरण मंत्र है जो सारे संसार को वश में कर उसे अपना बना लेता है।
- अविनय के सारे गुण शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं।
- 'विनय' के आगे सारे विश्व की संपत्ति फीकी है।
- वास्तविकता में संपत्तिशाली वह है जिसके पास विनय गुण है।
- विनय के बिना सभी व्रत नष्ट हो जाते हैं सो ठीक ही है, क्योंकि पानी के बिना कमल कैसे खिल सकते हैं ?
- विनय के बिना पुरुष की गुणरुप संपदाएँ नहीं होती है क्योंकि बीज के बिना कहीं भी धान्य की जातियाँ उत्पन्न नहीं होती।
- विनय के समान तीनों जगत में कोई मित्र नहीं है क्योंकि विनय से ही विद्याओं का रहस्य प्राप्त होता है।
- विनय मुक्ति का कारण है, विनय लक्ष्मी का कारण है, विनय प्रीति का कारण है और विनय बुद्धि का कारण है।
- जब तक बिजली का कनेक्शन नहीं होता है तब तक बल्ब

प्रकाशित नहीं होता उसी प्रकार जब तक विनय रुपी बिजली का कनेक्शन नहीं होता तब तक आत्मा में सुख - शांति व आनंद रुप प्रकाश नहीं हो पाता।

- 'विनय' से विपत्ति भी संपत्ति में बदल जाती है, दुःख - सुख में परिणत हो जाता है तथा निराशा, आशा की किरण बन जाती है।
- विनीत व्यक्ति का हृदय आनंद व खुशियों से आपूरित रहता है।
- मोक्ष के बंद दरवाजों को खोलने का काम विनय गुण करता है।
- अभिमान रुपी शत्रु को जीतने के लिए विनय रुपी अस्त्र की आवश्यकता होती है।
- यदि व्यक्ति बहुत बड़ - बड़ा तपश्चरण करे, सारे शास्त्र पढ़ काले बहुत सारी कलाओं से संपन्न हो जाए तो भी यदि विनय गुण नहीं है तो वह तपश्चरण, ज्ञान, सभि कलाये मुक्ति का हेतु नहीं बन सकती। मुक्ति का हेतु बनना तो दूर रहा वह सारी क्रियायें शीघ्र ही नष्ट हो जाती है अर्थात् शीघ्र ही उसका तपश्चरण ज्ञान न कलायें नष्ट हो जाती है।

लघुता

- लघुता ही जीवन का परम सौन्दर्य है।
- लघुता उत्थान की सीढ़ी है और जीवनोत्कर्ष का प्रारंभिक बिन्दु है।
- लघुता से सहनशीलता, गंभीरता, नम्रता जैसे गुणों का दर्शन होता है।
- लघुता ही महानता की निशानी है।
- लघुता से ही अभिमान को जीता जाता है।
- लघुता से शत्रु मित्र बन जाता है।
- लघुता ही हमारे जीवन में श्रेष्ठता लाती है।
- लघुता से हमारे जीवन में महत्वपूर्ण उपलब्धि प्राप्त होती हैं।
- लघुता में ही प्रभुता का वास है।
- लघुता के उदर से प्रभुता प्रकट होती है।
- लघुता का श्रृंगार कर महानता का पथ प्रशस्त करो।
- लघुता ही भक्ति को जन्म देती है।
- लघुता को धारण करने वाला अभिमान के पर्वतों को चकनाचूर कर देता है।
- लघु व्यक्ति सदैव सभी ओर से प्रेम, वात्सल्य व सम्मान पाता है।

३. " शीलव्रतेष्वनतिचार भावना "

- अहिंसादिक व्रत हैं और इसके पालन करने के लिए क्रोधादिक का त्याग करना शील है। तथा इन दोनों के पालन करने में निर्दोष प्रवृति करना शीलव्रतेष्वनतिचार भावना है।
- निरतिचार शीलव्रत ही तीर्थंकर नाम कर्म के बंध में कारण है।
- इस जगत में शील ही सब मनोरथों को सिद्ध करने वाला है इसलिए उसके बिना जीवित रहने की अपेक्षा प्राणविसर्जन करना अच्छा है।
- शील, सुख को करने वला है, हर्ष का जनक है, कुल को प्रकाशित करने वाला है, श्रेष्ठ आभूषण है, गुणकारी है, लक्ष्मी दायक है, अपने व्रत की रक्षा करने वाला है, शुभकारी है और यश का कारण है, इसलिए हे भव्यजनों ! जिनेन्द्र प्रतिपादित शील की मन - वचन - काय से सेवा करो।
- शीलवंत सर्वत्र जयवन्त, पूज्यनीय होता है।
- शील समस्त गुणसमूह का मस्तक मणि है। शील, विपत्ति की रक्षा करने वाला है। शील, उत्तम आभूषण है। शील मुनियों के द्वारा सदा सेवित है। शील, भयंकर शारीरिक रोग रुपी दावानल को शांत करने के लिए वर्षा ऋतु संबंधी मेघ का जल है और शील समस्त सुखों का अद्वितीय कारण है अतः किसके लिए वह इष्ट नहीं है।
- काम से पराजित मनुष्य न पिता की बात सुनता है, न माता की और न ही हितकारी मित्र आदि की, इसी से वह नाश को प्राप्त होता है।

- कुशील सेवन करने से आयु, तेज, बल, वीर्य, बुद्धि, लक्ष्मी, विशाल कीर्ति, पुण्य और उत्तम प्रीति से सहित नष्ट हो जाता है।
- कामी मनुष्य सदाचार को, गुरु की वाणी को, हित को, गुणों के समूह को और चित्त की स्वस्थता को छोड़ देता है।
- काम दोषों की खान, गुणों का विनाशक, पाप का आत्मबंधु और भारी आपत्तियों का संगम - मेल है।
- तीन गुण व्रत तथा चार शिक्षाव्रत ये श्रावकों के सप्त शील व्रत हैं।
- शील अर्थात् स्वभाव में रहना, निश्चय नय की दृष्टि से जो आत्मा वैभाविक परिणतियों से परिणत है वह शील अर्थात् स्वभाव में नहीं है।
- जो स्वभाव में स्थित है वही शील के १८,००० दोषों से मुक्त है ऐसा समझना चाहिए।
- शीलवान का जीवन चमत्कारों से भरा होता है। शीलवंत के समक्ष सूली भी सिंहासन बन जाती है, नाग भी फूलों का हार बन जाता है। अतः शील की महिमा अकथनीय है।
- जो आत्म साधना करता हुआ शीलव्रत को अतिचार रहित पालन करने की अनवरत भावना भाता रहता है वह तीर्थंकर नामक पुण्य प्रकृति को बांधता है।
- शील अर्थात् स्वभाव में सुख है, शांति है, आनंद है जबकि कुशील अर्थात् विभाव में दुःख है, अशांति है, तथा अपमान है।
- शील व्रत के पालने से तेजस्वी शरीर की प्राप्ति होती है, शील से कुल की विपुलता होती है, शील से स्वर्ग मिलता है तथा शील चक्रवर्ती पद का दाता है।

- पर स्त्रियों के संबंधी पिता, पति, पुत्र, भाई, ताऊ चाचा इत्यादि कोई भी अपनी माता, बहिन, बेटी, पुत्रवधु, भतीजी के शील का नाश होता देखने को समर्थ नहीं हैं, जैसे तुमको शील प्रिय है, उसी प्रकार उनको भी अर्थात् दूसरों को भी शील धर्म प्रिय है।
- शील की महिमा को कहने में स्वयं वृहस्पति भी असमर्थ है।
- शीलवंत के ऊपर कभी भी कोई अपनी शक्ति नहीं चला सकता।
- शील के प्रभाव से विष भी अमृत बन जाता है।
- शीलवान जगत पूज्य जगत उद्धारक, पतितोद्धारक हो जाता है।
- उस परम पवित्र शील को पाने के लिए स्वयं देवता भी तरसते है।
- शील के समान कोई दूसरा सुख का हेतु भव से तारने वाला सेतु नहीं है।
- शील वह अस्त्र है जिसके द्वारा शीलवान कामशत्रु को ध्वस्त कर देता है।
- शीर रुप भूमि पर बोया गया तपश्चल रुपी बीज एक दिन पुष्पित, पल्लवित व फलीभूत होता है।

४. " अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग भावना "

- परमार्थ विषयक आत्मकल्याण के प्रति ज्ञान का जो निरंतर प्रवाह है वह अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग है।
- एक बार अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग के संस्कार हो जाने पर संसार के सारे रस, नीरस हो जाते हैं, सारे स्वाद बेस्वाद हो जाते हैं, अस्थिर उपयोग स्थिर हो जाता है।
- प्रारंभिक शिष्यों को सर्वप्रथम जिनवाणी के शब्द ही प्रयोजनीय हैं, अत: प्रारंभिकता में शब्दों को पकड़कर उनका मनन करो, चिंतन करो, उसके विषय में खोज करो, विचार करो सोचो।
- मक्खन प्राप्त करने के लिए जिस प्रकार पहले दूध को जामन के माध्यम से जमाना पड़ता है, फिर बर्तन में दही को मथानी से मथते है और ठंडा पानी डालकर बार - बार मथते जाते हैं तो फिर वह मक्खन ऊपर आ जाता है और प्रयोजनीय हो जाता है उसी प्रकार ज्ञान, अध्ययन करके फिर उसका चिंतन, मंथन करना चाहिए, तभी वह अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग कहलायेगा।
- ज्ञान रुपी जल से अपने घड़े को तब तक भरो जब तक कि केवलज्ञान न हो जाए।
- अनवरत ज्ञान की ललक बनी रहना चाहिए, कभी तृप्त नहीं होना चाहिए बल्कि ज्ञान को पाने निरंतर प्रयास करना चाहिए।
- उपदेश सुनने या जिनवाणी श्रवण करने में मन को केंद्रित करना भी अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग है।
- जिनवाणी या गुरुओं के उपदेश बार - बार सुनने से वे संस्कार के रुप में हमारे अंदर आ जाते हैं तथा भविष्य में देशना लब्धि का काम करते हैं।

- जीवादि पदार्थ रुप स्वतत्व विषयक सम्यग्ज्ञान में निरंतर लगे रहना अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग है ।
- जो ज्ञान के विषय में प्यासे रहते हैं, भूखे रहते हैं, अतृप्त रहते हैं, लालायित रहते हैं, उत्सुक रहते हैं, जो निरंतर धर्म को जानने के लिए प्रयत्नशील हैं, उद्धत हैं वे ही अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग भावना को सार्थक करते हैं ।
- मोक्ष लक्ष्मी के समागम में उत्सुक मुनियों ने शांति के महायुद्ध में ज्ञान रुपी शस्त्र के द्वारा राग रुपी मल्ल को मार गिराया ।
- जो आत्मा तत्व को जानती है, जिससे मन निरुद्ध होता है और जिससे जीव पाप से विमुक्त होता है, ज्ञानी पुरुष उसे ज्ञान कहते हैं उसी का निरंतर अभ्यास करना चाहिए ।
- ज्ञान रुपी रथ पर सवार हुए भव्य जीव शीघ्र ही मोक्ष रुपी नगर को प्राप्त होते हैं और मूर्खता रुपी रथ पर सवार हुए अज्ञानी जीव निश्चय से नरक रुपी गड्ठे को प्राप्त होते हैं ।
- विद्धानों ने शास्त्र का उत्कृष्ट फल संवेग ही कहा है अत: जो शास्त्र से धन की इच्छा करते हैं वे अमृत से विष की इच्छा करते हैं ।
- ज्ञान से निर्मल यश प्राप्त होता है, ज्ञान से सब ऋद्धियाँ सिद्ध होती है, ज्ञान से केवलज्ञान प्राप्त होता है और ज्ञान से जगत में सत्पुरुषों को कल्याण की प्राप्ति होती है ।
- जिस प्रकार सदा माँजा जाने वाला दर्पण निर्मल रहता है उसी प्रकार ज्ञानाभ्यास से पुरुषों की बुद्धि निर्मल रहती है ।
- विनय से पढ़ा हुआ शास्त्र प्रमाद से यदि विस्मृत भी हो जाता है तो भवान्तर में नियम से प्राप्त हो जाता है ।

ज्ञान

- ज्ञान के बल से पापों को एक क्षण में क्षय किया जा सकता है ।
- अज्ञानी को पाप क्षय करने के लिये करोड़ों भव लगते हैं ।
- संतों के प्रत्येक कदम ज्ञान के साथ होते हैं ।
- ज्ञान के माध्यम से ही समता रखी जा सकती है ।
- ज्ञान से ही हम पापों की संवर और निर्जरा कर सकते हैं ।
- ज्ञान ही हमें सही मार्ग दिखाता है ।
- ज्ञान ही हमारा चिंतन सम्यक् बनाता है ।
- जो जितना महान होता है उसकी महानता उसके ज्ञान में छिपी रहती है ।
- जब (चिंतन) ज्ञान होता है तो हिताहित की पहचान होती है ।
- ज्ञान ज्योति हैं, नेत्र हैं ।
- ज्ञान पथ प्रदर्शन करने वाला प्रकाश है ।
- ज्ञान के बिना प्राणी अपने हित - अहित को नहीं समझ पाता है ।
- हिताहित दोनों को एक न मानकर दोनों को अलग - अलग मानने वाला ज्ञान है ।
- गुणों की ओर प्रवृत्ति का होना उसका नाम ज्ञान है ।
- ज्ञान, वैराग्य को पूर्ण सफल बनाता है ।
- वैराग्य रहित ज्ञान, ज्ञान नहीं है ।

- ज्ञान व्यक्ति को गड्ढे की ओर नहीं जाने देता। यदि चला भी जाये तो वह उसे गिरने नहीं देता।
- गुण - दोषों को जानकर करणीय - अकरणीय को जानना वह ज्ञान है।
- ज्ञान हमें सुख - शांति को प्रदान करता है।
- ज्ञान परम अमृत है जो विपरीत परिस्थितियों को अनुकूलता में परिवर्तित कर देता है।
- ज्ञानी जीव जहाँ भी जाता हैं वहां उपलब्धियाँ पा लेता है।
- ज्ञानी जीव जन्म - जरा - मृत्यु जैसे रोग नष्ट करने में सक्षम रहता है।
- ज्ञानी जीव ध्यान करने में सक्षम होता है।
- ज्ञानी अपनी आत्मा को देखता है और अपनी आत्मा में डूब जाता है।
- ज्ञानी जीव दुःख को सुख रुप में परिवर्तित कर लेता है।
- ज्ञान वह जो मौके पर काम आये।
- जो ज्ञान - वैराग्य से सहित होता है उसे धर्म का आनंद आता है।
- जब ज्ञान नहीं होता तो विवेक उत्पन्न नहीं होता।
- सुख में भक्ति ज्ञान दुःख के आने पर विनाश को प्राप्त हो जाता है इसलिए आत्मा को सदैव दुःख से भावित करते रहना चाहिए।
- ज्ञान वह परमौषधी है जो विपरीत अवस्था में अपना असर दिखाती है।

" संवेग भावना "

- धर्म व धर्म के फलों में हर्ष भाव संवेग है।
- संसार के दुःखों से नित्य भयभीत रहना संवेग है।
- जिस व्यक्ति के लिए संसार से वैराग्य नहीं हुआ, संसार से भय नहीं हुआ, संसार के प्रति उदासीनता नहीं आयी तो वह धर्म क्षेत्र में कितना भी आगे क्यों न बढ़ जाये परंतु उसे धर्म का स्वाद नहीं आ सकता।
- संवेग भावना भव भीरुता उत्पन्न करती है तथा जहाँ संसार के प्रति डर है, भय है वहां पर उन्नति, उत्थान के रास्ते हैं।
- जो संवेग भावना से रहित होकर, निर्भीकता से मोक्ष पथ पर बढ़ते हैं तथा स्वच्छन्द प्रवृत्ति करते हैं वे इस मार्ग पर सफल नहीं हो सकते अर्थात् निर्वाण नहीं पा सकते।
- भगवान से भयभीत नहीं अपितु कर्मों से, पापों से तथा संसार परिभ्रमण से भयभीत होना चाहिए।
- प्रायः प्राणी अनुकूलता में बहुत सारे कर्म हंसते - हंसते बांधता है और कहता है किसने देखा स्वर्ग, किसने देखा नरक। परंतु जब पापों के उदय से नरकादि दुर्गति को पाता है तो असह्य वेदना भोगता है, संवेग के अभाव में यह अवस्था बनती है।
- संवेग भावना सदा व्यक्ति को पापों से सावधान करती है।
- पाप हो जाने पर, पापी तो हर्षित होता है तथा पाप के उदय में पाप ही कमाता है। परंतु संवेग भावना जिसके अंदर है ऐसे व्यक्ति से यदि पाप हो जाए तो वह पश्चाताप करता है, दुःखित होता है। हे भगवन्! मुझसे बड़ा अपराध हुआ, निंदा, गर्हा करता है फलतः विशुद्ध परिणामों के बल से पाप को धो लेता है।

- एक ज्ञानी व्यक्ति कुछ नहीं कर रहा है, मात्र एकांत स्थान पर बैठकर यही चिंतन कर रहा है कि मेरी असावधानियों ने ही मुझे कष्ट में डाला है, दूसरा कोई कभी किसी को दुःख नहीं देता, यह उसकी संवेग भावना का ही फल है ।
- एक भक्त भगवान के चरणों में पहुँचकर हर्षित हो जाता है अहोभाग्य, धन्यभाग्य जो त्रिलोकीनाथ का दर्शन पा लिया धर्म को पाकर जो हर्ष रुप भाव हो रहा है वही संवेग है ।
- एक लंबे उपवास करने वाला व्यक्ति, उपवास करके प्रशन्न होता है वह हाथ जोड़ता है और कहता है सबका मुझे प्रेम मिला, सेवा मिली, उत्साह मिला जिसके बल पर मैं सफल हो सका, यहाँ संवेग भावना अपना काम कर रही है ।
- एक व्यक्ति दीक्षा, पंचकल्याणक, विधान आदि धार्मिक कार्यों को करते हुए बहुत प्रशन्नता से भरा है अहोभाग्य ! जो ऐसी पवित्र दीक्षा मुझे देखने का सौभाग्य मिला । पंचकल्याणक, विधान में शामिल होने का सुअवसर प्राप्त हुआ, यह हर्ष भाव ही संवेग है ।
- जो भव्य निरंतर संवेग भावना को भाता है संसार शरीर, भोगों से विरक्त रहता है धर्म व धर्म के फल में हर्षित होता है एक दिन वह निश्चित रुप से तीर्थंकर प्रकृति का बंध करता है ।
- दूसरों में आत्मीयता को उत्पन्न करने वाली, आत्मा को परमात्मा बनाने वाली सीढ़ी संवेग है ।
- संवेग आत्म सुख, संतोष, आनंद को उत्पन्न करता है, दुःखों का नाश करता है तथा वैराग्य व ज्ञान शक्ति को बल देता है ।
- जो संवेग भावना से रहित है उससे मुक्ति वधू रुष्ट हो जाती है, उसका वरण तो दूर उसकी ओर देखना भी पसंद नहीं करती ।

" शक्तितस्त्याग - भावना "

- स्व व पर अनुग्रह के लिए जो अपनी वस्तु का या किसी पदार्थ का उत्सर्जन किया जाता है वह त्याग है तथा शक्ति के अनुसार त्याग करना शक्तितस्त्याग है तथा शक्ति के अनुसार त्याग करने की निरंतर भावना भाना ' शक्तितस्त्याग भावना ' है ।
- परिग्रह का त्याग करना पुरुष के हित के लिए है, जैसे - जैसे वह परिग्रह से रहित होता है वैसे - वैसे उसके खेद के कारण हटते जाते हैं ।
- खेद रहित मन में उपयोग की एकाग्रता और पुण्य संचय होता है ।
- परिग्रह की आशा बड़ी बलवती है, यह समस्त दोषों की उत्पत्ति का स्थान है । जैसे पानी से समुद्र का बड़वानल शांत नहीं होता उसी तरह परिग्रह से आशा रुपी समुद्र की तृप्ति नहीं हो सकती ।
- यह आशा रुपी गड्ढा ऐसा गड्ढा है जिसका भरना बहुत कठिन ही नहीं असंभव है ।
- थोड़ी वस्तु भी दान के योग्य होती है, दान के विषय में महान अभ्युदय की अपेक्षा नहीं करनी पड़ती है क्योंकि इच्छानुसार शक्ति कब और किसके होगी ?
- त्याग अथवा दान उत्तम पात्रों को आहार, औषध, अभय व शास्त्र दान के रुप में किया जाता है ।
- अभय दान देने से मनुष्य निर्भय होता है, आहार दान देने से भोग युक्त होता है, औषधि दान देने से आरोग्य - निरोगता प्राप्त होती है तथा शास्त्र दान देने से श्रुतकेवली होता है ।

- शरीर के रहते हुए सत्पुरुष समस्त सुरेन्द्र और असुरेन्द्रों के द्वारा पूजित, युक्ति के उत्कृष्ट कारण तथा तीनों लोकों को प्रकाशित करने वाले रत्नत्रय को धारण करते हैं। उस शरीर की वृत्ति उत्कृष्ट भली पूर्वक दिये हुए जिन गृहस्थों के अन्न से होती है उन गुणवान गृहस्थों का धर्म किसके लिये प्रिय नहीं है ? अर्थात् सभी के लिए प्रिय है।
- गृहस्थों को विधि के अनुसार, देश के अनुसार, अपनी शक्ति के अनुसार, आगम के अनुसार, पात्र के अनुसार तथा समय के अनुसार दान देना चाहिए।
- पाव भर आटे में मोक्ष मिलता है क्योंकि मुक्ति के मार्ग का अनुसरण आहार दान से होता है।
- भावों की विशुद्धि के लिए बाह्य परिग्रह का त्याग किया जाता है। जो अंतरंग परिग्रह से सहित है, उसका बाह्य त्याग निष्फल है।
- दरिद्र मनुष्य अपने पाप के कारण बाह्य परिग्रह के त्यागी तो स्वयं हैं पर जो अंतरंग परिग्रह का त्यागी है ऐसा साधु लोक में दुर्लभ है।
- जो धन से रहित गरीब त्याग करने के लिए धन का संचय करना श्रेष्ठ मानता है, वह " स्नान करुंगा " इस विचार से अपने शरीर को कीचड़ से लीपता है।
- जीव परिग्रह के निमित्त हिंसा करता है, असत्य बोलता है, चोरी करता है, मैथुन का सेवन करता है और अत्यधिक मूर्च्छा करता है अत: परिग्रह सभी पापों की जड़ है।
- जो त्याग करता है वह हल्का हो जाता है तथा हल्की वस्तु सदैव ऊपर उठती है। परिग्रह रुप पाप का त्याग कर आत्मा

पाप से हल्की होकर ऊपर उठ जाती है। अर्थात् अपने शुद्ध स्वरूप को प्रकट कर लेती है।

- शक्ति के अनुसार किया गया त्याग एक दिन महान अभ्युदय को प्रदान कराता है।
- नि:कांक्षित त्याग मुक्ति का सोपान है।
- संयम के योग्य ज्ञानादि का दान करना त्याग है।
- जिनेन्द्र देव ने कहा है कि जो जीवन सारे पर द्रव्यों के मोह को छोड़कर संसार, देह और भोगों से उदासीन परिणाम रखता है उसे त्याग धर्म होता है।
- सचेतन और अचेतन परिग्रह की निवृत्ति को त्याग कहते है।
- बुढ़ापा आने से बाल सफेद हो जाते है, दांत भी हिलने लगते हैं, आँख, कान भी जीर्ण हो जाते है किंतु एक तृष्णा ही तरुण होती जाती है।
- सदाचारी पुरुष के द्वारा मुनि के लिए जो प्रेमपूर्वक आगम का व्याख्यान किया जाता है, पुस्तक दी जाती है तथा संयम की साधनभूत पिच्छी आदि भी दी है उसे त्याग धर्म कहा जाता है।
- सुपात्र में चार प्रकार का दान देना और देव शास्त्र गुरु की पूजा करना श्रावक का मुख्य धर्म है इसके बिना वह श्रावक नही है।

" शक्तितस्तप भावना "

- कर्म क्षय के लिए जो तपा जाता है वह तप है ।
- पांचों इंद्रियों के विषयों को तथा चारों कषायों को रोककर शुभ ध्यान की प्राप्ति के लिए जो अपनी आत्मा का विचार करता है उसके नियम से तप होता है ।
- काय, मन और वचन गुप्ति से युक्त होकर जो अनेक प्रकार के तप करता है वह मनुष्य विपुल कर्म की निर्जरा करता है ।
- शक्ति को न छिपाते हुए मोक्षमार्ग के अनुकूल शरीर को क्लेश देना यथा शक्ति तप है ।
- संयम रहित तप महान उपकारी नहीं है । उसका तप हस्तिस्नान की भाँति जानना चाहिए अथवा दही मथने की रस्सी की तरह जानना चाहिए ।
- जैसे प्रज्ज्वलित अग्नि तृण को जलाती है उसी प्रकार तप रुप अग्नि कर्म रुप तृण को जलाती है ।
- उत्तम प्रकार से किया गया तप और कर्मास्रव रहित तप का फल वर्णन करने में जिसकी हजार जिव्हाएँ हैं, ऐसा भी कोई देव समर्थ नहीं हैं ।
- तप से सभी अर्थों की सिद्धि होती है । इससे ऋद्धियों की प्राप्ति होती है ।
- तपस्वियों की चरण रज से पवित्र स्थान ही तीर्थ बन जाते हैं ।
- जिसके तप नहीं वह तिनके से भी लघु है । उसे सब छोड़ देते हैं वह संसार से मुक्त नहीं हो सकता ।

- अपनी शक्ति को नहीं छिपाकर मार्गविरोधी कायक्लेशादि करना तप है ।
- इच्छा / लौकिक आकांक्षा से युक्त होकर किया गया तप ही वास्तविक तप है ।
- जो व्यक्ति न तो अपनी शक्ति को छिपाता है और न ही शक्ति का अतिरेक करता है उस विवेकी का वह तप उसे शीघ्र ही महान अभ्युदय को प्रदान कराता है ।
- बहिरंग तप के साथ - साथ जो अंतरंग तप की साधना करता है वह संपूर्ण कर्मों का क्षय कर तीनों लोकों का स्वामी बन जाता है ।
- यह तपश्चरण ही चिंतामणि दिव्य रत्न है, महान कल्पद्रुम है, तप ही सदा रहने वाला निधान (खजाना) है और तप ही उत्कृष्ट कामधेनु है ।
- जो आत्म स्वरुप में तो स्थिर नहीं है किंतु तप करता है तथा व्रतों को धारण करता है उसका सब तप व व्रत सर्वज्ञ देव ने अज्ञान तप व अज्ञान व्रत कहा है ।
- जैसे तपाया हुआ स्वर्ण पाषाण अग्नि से संतप्त होकर शुद्ध हो जाता है, उसी प्रकार स्वर्ण पाषाण की भांति यह जीव तप के द्वारा कर्मों से शुद्ध हो जाता है ।
- विनय से हीन हुए मनुष्य की संपूर्ण शिक्षा निरर्थक है, विनय शिक्षा का फल है और विनय का फल सर्व कल्याण है ।
- निदान रहित, निरभिमानी ज्ञानी पुरुष के वैराग्य की भावना से अथवा बारह प्रकार के तप के द्वारा कर्मों की निर्जरा होती है ।
- बाह्य तप वही है, जिससे मन अशुभ को प्राप्त नहीं होता है, जिससे श्रद्धा, शुभ अनुराग उत्पन्न होता है, जिससे योग हीन

नहीं होते हैं अर्थात् मूलगुण हानि को प्राप्त नहीं होते हैं।

- तीर्थंकर, गणधर आदि मुनीन्द्रों ने इंद्रियों के उपशमन को (विषयों में न जाने देने को) उपवास कहा है, इसलिए जितेन्द्रिय पुरुष आहार करते हुए भी निराहारी हैं।
- बाह्य तप, अंतरंग तप की वृद्धि के लिए होते हैं।
- तप मनुष्यों के लिए चिंतामणि रत्न है, कामधेनु है, ललाट के सुंदर तिलक के समान साधु जीवन की शोभा बढ़ने वाला है तथा तप सम्मान का भूषण है।
- श्रेष्ठ ज्ञान रुपी हवा युक्त शील, श्रेष्ठ समाधि व संयम से प्रज्जवलित हुई तप रुपी अग्नि भव बीज को जला देती है जैसे कि अग्नि तृण, काष्ठ आदि को जला देती है।
- संपूर्ण बाह्य द्रव्यों की इच्छा को दूर करने रुप लक्षण का धारण तपश्चरण कहा है।
- जो आत्मा और शरीर को भिन्न नहीं जानता है वह घोर तपश्चरण करके भी मोक्ष को प्राप्त नहीं कर सकता है।
- लोक में मनुष्य जन्म दुर्लभ है, भेद विज्ञान अति दुर्लभ है, जैन धर्म अत्यंत दुर्लभ है। तथा तप तीनों लोको में दुर्लभ है।
- जहाँ कषायों का निरोध, ब्रह्मचर्य का पालन जिन पूजा तथा अनशन किया जाता है वह सब तप है विशेष कर मुषध अर्थात् भक्त जन यही तप करते हैं।

" साधु - समाधि भावना "

- जैसे भण्डागार में आग लग जाने पर बहुत उपकारी वस्तु को आग से सुरक्षित किया जाता है उसी प्रकार व्रत और शील से समृद्ध मुनि के तप करते हुए किसी कारण से विघ्न के उत्पन्न होने पर उनका संधारण करना, शांत करना समाधि है।
- मन को शुभोपयोग या शुद्धोपयोग में एकाग्र करना वह समाधि है।
- उत्तम परिणामों में चित्त का स्थिर रखना अथवा पंच परमेष्ठियों के स्मरण को समाधि कहते हैं।
- शुक्लध्यानारुढ़ अवस्था भी समाधि है अर्थात् अध्यात्म ग्रंथों में ध्यान को ही समाधि संज्ञा दी जाती है।
- जिस तरह मुख की शोभा ललाट से होती है, ललाट की शोभा तिलक से होती है, राजा की शोभा मुकुट व सिंहासन से होती है, मंदिर की शोभा शिखर से होती है शिखर की शोभा कलश से होती है उसी प्रकार साधना की शोभा समाधि से होती है।
- समाधि वह फल है जिस फल को पाने के लिए संतजन निरंतर /जीवन भर साधना की यात्रा करते हैं।
- समाधि वह मंजिल है जिसे पाने के लिए त्याग और तपस्या की कितनी सारी सीढ़िया चढ़नी पड़ती हैं।
- सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र में अवस्थान होने का नाम समाधि है।

- जिस समय योगीजन, अपनी योग साधना, ध्यान साधना में संलग्न होते हैं उस समय उनका लक्ष्य एक मात्र समाधि का होता है ।
- जो यति एक बार भी समाधि पूर्वक मरण को प्राप्त कर लेता है वह अनेक भव संसार में भ्रमण नहीं करता अपितु अधिक से अधिक ८ भवों में नियम से मुक्ति को प्राप्त कर लेता है ।
- बाल पंडित मरण करने वाला श्रावक उत्कृष्टता से ७ भवों में नियम से सिद्ध होता है ।
- दर्शन, ज्ञान, चारित्र व तप रुप चार आराधनाओं की आराधना करने वाला उत्कृष्ट से ७ वें भव तथा जघन्य से तीसरे भव में मुक्ति को पा लेता है ।
- मात्र मृत्यु का नाम समाधि नहीं, अपितु पूर्ण विवेक के साथ संयम धर्म की रक्षा हेतु प्राणों का काय व कषाय को कृश करते हुए छोड़ना समाधि है ।
- समाधि में साधक को संक्लेशता नहीं आनंद होता है ।
- हे परमात्मा ! वह दिन, वह घड़ी, वह क्षण कब आ जाए कि मैं साधु बनकर निर्विकल्प दशा में तल्लीन रहूँ इस भावना को भाने का नाम ही साधु समाधि है ।
- जब संतजन शुद्धोपयोग में तल्लीन होते हैं तब वे सातवें आदि उपरिम गुणस्थानों को प्राप्त करते हैं तब वे अभेद रत्नत्रय या निर्विकल्प समाधि में स्थित कहे जाते हैं ।
- जो मृत्यु के विषय में सोचता है तो संसार की क्षणभंगुरता का ज्ञान होता है और कदम पापों से हटकर पुण्य कार्य की ओर बढ़ने लगते हैं ।

- प्रति समय इस प्राणी की मृत्यु हो रही है शास्त्रों में इसे अवीचि मरण कहते हैं ।
- ज्ञानी सोचता है धीर भी मरता है अधीर भी मरण को प्राप्त करता है। वीर भी मरता है तथा डरपोक भी मरता है जब मरण होना सुनिश्चित है तो क्यों न वीर मरण करुँ । मृत्यु को 'महोत्सव' बना दूँ ऐसे परिणामों को या भावना को भाना साधु समाधि भावना है ।
- साधु समाधि भावना को भाने वाला एक दिन तीर्थंकर पद प्राप्त कर पंडित - पंडित मरण को प्राप्त करता है ।
- जीवन का अंतिम लक्ष्य है - सल्लेखना ।
- साधक की साधना का चर्मोत्कर्ष है - सल्लेखना ।
- साधक की सम्पूर्ण साधना का निचोड़ है - सल्लेखना ।
- जीवन का अंतिम सोपान है - सल्लेखना ।
- सल्लेखना पर्वक मरण करना कोई आत्मघात या आत्महत्या नहीं, यह तो जीवन के पवित्र बनाने की कला है ।
- जीवन को जीवंत एवं मृत्यु को जीतने की अनोखी प्रक्रिया है - सल्लेखना ।
- सल्लेखना का अर्थ सत् - लेखना अर्थात् सम्यक् या समीचीन रीति से शरीर और कषायों का लेखन अर्थात् कृश करना ।
- सल्लेखना का अभ्यास प्रारंभ से इसलिये आवश्यक होता है ताकि साधक मृत्यु की बेला में सावधान रहें ।
- सल्लेखना का पूर्व से अभ्यास नहीं किया तो उसे मृत्यु के अंतिम क्षण में घर - परिवार आदि नजर आने लगते हैं ।

- सल्लेखना जीवन को जीवंत बनाने की अनुपम कला है।
- जीवनोत्कर्ष, जीवनोत्थान तथा जीवनोन्नति का मूल मंत्र है - सल्लेखना।
- सल्लेखना आत्म स्वस्थता की एक अचूक संजीवनी है।
- सल्लेखना को साधक प्रीतिपूर्वक धारण करता है।
- सल्लेखना धारणकर साधक स्वात्म धर्म की रक्षा हेतु, शरीर और कषाय को कृश करता है।
- चाहे धीर हो या अधीर, मरना दोनों को पड़ता है, तो क्यों नहीं मैं धीर मरण करूँ। धीर, वीर पुरुष ही सल्लेखना पूर्वक मरण करते है, कायर नहीं।
- जीवन का अंतिम बिन्दु यानि जीवन का सार सल्लेखना है।
- सल्लेखना पूर्वक मरण का अर्थ है - समाधि मरण।
- यदि कसी ने जीवन के अंतिम क्षणों में भी सल्लेखना धारण कर ली तो समझो, उसका जीवन सार्थक हो गया।
- सल्लेखना धारण कर जीवन का अंत करना ही जैनदर्शन में सुमरण कहा है।
- हर श्वांस में भगवान का नाम एवं अहर्निश सल्लेखना की श्रेष्ठ भावना होना चाहिए।

" वैय्यावृत्ति भावना "

- शरीर की पीड़ा अथवा कलुषित परिणामों को दूर करने के लिए शरीर से अथवा किसी औषधि आदि से या अन्य द्रव्य से अथवा देने में प्रवृत्त होना ये सब क्रियाएँ वैय्यावृत्ति हैं।
- किसी साधर्मी पर आयी विपत्ति, कष्ट या तकलीफ को अपने विवेक से दूर कर देना वैय्यावृत्ति है।
- जो निशदिन प्रमाद को छोड़कर वैय्यावृत्ति में तत्पर होता है वह शीघ्र ही भव से पार हो जाता है।
- वैय्यावृत्ति एक श्रेष्ठ गुण व आंतरिक तप है।
- वैय्यावृत्ति स्वार्थ सिद्धि के लिए नहीं, अपितु निःस्वार्थ भावना से करनी चाहिए।
- वैय्यावृत्ति पर में प्रीति भाव उत्पन्न करती है अर्थात् आपसी प्रेम, वात्सल्य तथा आत्मीयता आदि गुण समूह की जननी वैय्यावृत्ति है।
- वैय्यावृत्ति करने से सम्यग्दर्शन का संवर्धन होता है।
- गुण ग्रहण के परिणाम, श्रद्धा, भक्ति, वात्सल्य, पात्र की प्राप्ति, अविच्छिन्न सम्यक्त्वादि का पुनः संधान, तप, पूजा, तीर्थ, अव्युच्छिन्न समाधि, जिनाज्ञा पालन, संयम, सहाय, दान, तुष्टि निर्विचिकित्सा, प्रभावना और कार्य निर्वाहन ये अठारह गुण आगम में वैय्यावृत्ति के गिनाये हैं।
- कोई अस्वस्थ साधु यदि अपने द्वारा करवट नहीं ले सकते, उठ नहीं सकते, बैठ नहीं सकते तो उन्हें करवट दिलाना, उठाना, बिठाना, आहार के लिए ले जाना, आहार संशोधन करना यह सब वैय्यावृत्ति है।

- कदाचित् कोई मुनिराज विहार करके आये हैं , थके हुए हैं तो उनकी सेवा कर देना, हाथ - पैर दबा देना यह वैय्यावृत्ति है ।
- साधकों के ऊपर आये उपसर्ग या परिषहों को दूर कर देना भी वैय्यावृत्ति है ।
- कोई साधक कर्मोदय वशात् यदि दर्शन या चारित्र से भ्रष्ट हो रहा हो तो उसे संबोधन आदि देकर पुनः दर्शन व चारित्र में स्थापित कर देना सबसे उत्कृष्ट वैय्यावृत्ति है ।
- कोई शैक्ष्य मुनि ज्ञानाराधना में लगे हैं विशेष चिंतन, लेखन आदि कार्यों में व्यस्त हैं तो शोर गुल न स्वयं करना और यदि कोई दूसरा करता हो तो उसे रोक देना । उनके लिए पाटा, चौकी, चटाई आदि लगा देना ज्ञानोपकरण प्रदान कर देना यह सब वैय्यावृत्ति है ।
- कदाचित् साधु महाराज का कोई शास्त्र फट रहा हो तो उस पर कवर चढ़ा देना, पिच्छी (संयमोपकरण) खराब हो रही हो तो व्यवस्थित कर देना, उपकरणों का शोधन कर देना यह सब वैय्यावृत्ति है ।
- गुणानुराग से प्रेरित होकर वैय्यावृत्ति करना चाहिए ।
- समर्थ होते हुए तथा अपने बल को न छिपाते हुए भी जिनोपदिष्ट वैय्यावृत्ति को जो नहीं करता है वह धर्म भ्रष्ट है ।
- जिनाज्ञा का भंग, शास्त्र कथित धर्म का नाश अथवा साधुवर्ग व आगम का त्याग ऐसे महादोष वैय्यावृत्ति न करने से उत्पन्न होते हैं ।
- जो साधु होकर वैय्यावृत्ति नहीं करता तथा जो श्रावक / धार्मिक होकर भी वैय्यावृत्ति नहीं करता वह व्यक्ति तीर्थंकर की आज्ञा का पालन नहीं करता, ऐसा साधु धर्म व संघ से बाह्य हैं ऐसा समझना चाहिए ।

- आध्यात्मिक तथा भौतिक विकास के लिए वैय्यावृत्ति भावना का चिंतन परमावश्यक है ।
- वैय्यावृत्ति भावना स्व-पर हितकारी है जिसके जीवन में यह महान गुण है उसका जीवन सुगंधित पुष्पों की तरह विकसित तथा सुरभित होगा ।
- रत्नत्रय धारी की साधना में आये विघ्नों को दूर करना वैय्यावृत्ति तप है ।
- वैय्यावृत्ति करने से मानसिक प्रसन्नता होती है चित्त निर्मल रहता है ।
- वैय्यावृत्ति करने वाला एक दिन वज्रवृषभ नाराच संहनन का धारी होता है ।
- वैय्यावृत्ति मानसिक, वाचनिक व कायिक तीन प्रकार से की जा सकती है ।
- किसी मोक्षमार्ग से डिगते हुए अपने साधर्मी भाई को संबोधन आदि देकर पुनः मोक्षमार्ग में स्थित कर देना सबसे बड़ी आध्यात्मिक वैय्यावृत्ति है ।
- सेवा और वैय्यावृत्ति में अंतर है । सेवा में पूज्यता, अपूज्यता से प्रयोजन नहीं सेवा तो दीन, दुःखी, दरिद्री किसी की भी की जा सकती है परंतु वैय्यावृत्ति में पूज्यता का भाव है रत्नत्रय धारियों की पूज्य पुरुषों की वैय्यावृत्ति की जाती है ।

" अर्हंत भक्ति भावना "

- अरि अर्थात् मोह कर्म और रज अर्थात् ज्ञानावरण, दर्शनावरण कर्म व अंतराय कर्म जो इन चार के हनन करने वाले हैं। इसलिए अरि का प्रथमाक्षर अ, रज का प्रथमाक्षर र उसके आगे हनन का वाचक हन्त शब्द जोड़ देने पर अर्हंत बनता है तथा उन अर्हंतों के गुणों में जो अनुराग है वह अर्हंत भक्ति है तथा जो निरंतर अर्हंतों के गुणों में अनुराग रुप भक्ति की भावना भाता है वह अर्हंत भक्ति भावना कहलाती है।
- स्त्री का फल पुत्र है, शास्त्र का फल शांति है, संपत्ति का फल दान है, लक्ष्मी का फल कीर्ति है, श्रम का फल धन है, मुनियों का फल ज्ञान, शूरता का फल भय भीत मनुष्यों की पीड़ा नष्ट करता है, यौवन का फल दीक्षा है और जन्म धारण करने का फल श्री जिनेन्द्र देव के चरण कमल युगल की निरंतर सेवा करना है।
- एक भक्त अरहन्त देव से प्रार्थना करता है तीनों लोकों के गुरु और उत्कृष्ट सुख के अद्वितीय कारण ऐसे हे जिनेश्वर ! इस मुझ दास के ऊपर ऐसी कृपा कीजिए कि जिससे मुझे भी मुक्ति हो जाए।
- जिनेन्द्र भगवान की स्तुति करने से विघ्नों के समूह, शाकिनी, डाकनी, भूत पिशाच और सर्प नष्ट हो जाते हैं तथा विष भी निर्विषता को प्राप्त हो जाता है।
- कल्पवृक्ष, कामधेनु व चिंतामणि रत्न चिंतित व मांगने पर इच्छित वस्तु प्रदान करते हैं इनके समक्ष तो याचना करनी पड़ती है परंतु जो भव्य निरंतर अर्हंत भक्ति में लीन रहता है उसे बिन माँगे ही सब कुछ मिल जाता है।

- अर्हंत भक्ति करने से निधत्ति व निकांचित जैसे वज्र कर्म भी क्षय को प्राप्त हो जाते हैं।
- अर्हंत भक्ति मुक्ति का शाश्वत सोपान है।
- अर्हंत भक्ति मोक्ष महल की अनुपम कुंजी है।
- अर्हंत देव का सच्चा भक्त यदि अग्नि में भी प्रवेश कर जावे तो वह अग्नि भी निर्मल जल में परिणत हो जाती है।
- भयानक बड़वानल में फंसा भी श्री अर्हंत देव का उससे सुरक्षित बाहर आ जाता है।
- अर्हंत भक्ति की ऐसी अचिंत्य महिमा है कि जिसके प्रभाव से विष भी निर्विष हो जाता है, शत्रु भी मित्र बन जाता है। तथा आपदाएँ भी संपदाए बन जाती हैं।
- अर्हंत भक्ति में लीन भक्त भयंकर रण भूमि में युद्ध करता हुआ विजय श्री को प्राप्त करता है।
- संपूर्ण सुखों व आनंद की जननी अर्हंत भक्ति है।
- संसार की बाँतों को सुनकर के भी अनसुना कर दें, देखकर भी अनदेखा कर दे, अनुभूति करके भी अननुभूति कर दें और परमार्थ को अनुभूति में लाए, उसी को सुने, उसे ही देखने का प्रयास करें, उसी को अपनी चर्या में लाने की निरंतर भावना भाएँ तभी हमारी अर्हंत भक्ति सार्थक होगी तथा हमारे जीवन में अमृत बोध प्रदान करेगी।
- जीवन को पावन, पुनीत बनाने का एक सशक्त माध्यम अर्हंत भक्ति है।
- अर्हंत देव के स्वरुप को जानकर, उनके गुणों को पहचान कर, उन जैसा बनने की अहर्निश जो भावना भायी जाती है वह अर्हंत भक्ति भावना है।

- अर्हंत देव का भक्त कभी दुःखी, दरिद्र, असंतोष, विपत्ति , ईर्ष्या, राग, द्वेष , मोह आदि दोषों से दूषित नहीं होता अपितु गुण समुद्र बन जाता है ।
- अज्ञानता का निवारण करने वाली है - अर्हंत भक्ति
- अज्ञानता समाप्ति के लिये अमोघ अस्त्र है - अर्हंत भक्ति ।
- अज्ञानता की विनाशक शक्ति है - अर्हंत भक्ति ।
- अज्ञान को ज्ञान में परिवर्तन करने वाली है - अर्हंत भक्ति ।
- ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम में प्रबल हेतु है - अर्हंत भक्ति ।
- विद्या विहीनता से प्राप्त कष्टों का अंत, जिनेन्द्र भक्ति से ही होगा ।
- पतित से पावन बनाने वाली है - अर्हंत भक्ति ।
- संसार की उलझनों से छुटकारा दिलाने वाली है - अर्हंत भक्ति ।
- जिनेन्द्र भक्ति वह औषधि है, जिसके सेवन से अज्ञानरुपी रोग स्वतः दूर हो जाता है ।
- जिनेन्द्र भक्ति अज्ञान रुपी अंधकार की समाप्ति के लिये दिव्य प्रकाश है ।
- जिनेन्द्र देव की भक्ति से पूर्व संचित कर्म क्षय हो जाते हैं ।
- जिनेन्द्र भक्ति सारे पापों का क्षय कर देती है ।
- संसार का विच्छेद करती है - अर्हंत भक्ति ।

भक्ति

- भक्ति से भरा मन ही वास्तविक शांति का आलय है ।
- भक्ति में आकुलता नहीं निराकुलता होनी चाहिए ।
- भक्ति में मन एकाग्र होना परमावश्यक है ।
- मन की चंचलता से भक्ति नहीं हो सकती है ।
- भक्ति रुपी समुद्र की गहराईयों में मन को डुबो देना मन की एकाग्रता है ।
- भक्ति जन्म - जरा मरण के रोगों को नष्ट करने की सर्वोत्कृष्ट औषधि है ।
- जिसके जीवन में भगवान का नाम है वही उनकी सच्ची भक्ति है ।
- भक्ति ही हमारे जीवन में शांति की शक्ति प्रदान करती है ।
- भक्ति ही भगवान बनने की एक सशक्त प्रयोगशाला है ।
- भक्ति का संबंध मन से होता है न कि बाहरी वातावरण से होता है ।
- मात्र सिर झुका देने का नाम भक्ति नहीं है ।
- भक्ति का रस मिल जाने पर विषय भोगों के आनंद फीके पड़ जाते हैं ।
- भक्ति से जीव के सम्पूर्ण मैल धुल जाते हैं ।
- सबसे बड़ा शांति का खजाना एवं भंडार है - भगवान की भक्ति ।
- मनः विशुद्धि भक्ति की प्रथम सीढ़ी है ।
- भक्त को भगवान की भक्ति से सुन्दर रुप प्राप्त हो जाते हैं ।
- भक्ति, अंतरंग की निर्मलता से होनी चाहिए, मलीनता के साथ नहीं ।

" आचार्य भक्ति भावना "

- प्रवचन रुपी समुद्र के जल के मध्य में स्नान करने से अर्थात् परमात्मा के परिपूर्ण अभ्यास और अनुभव से जिनकी बुद्धि निर्मल हो गयी है, जो निर्दोष रीति से छह आवश्यकों का पालन करते हैं जो मेरु के समान निष्कंप है, जो शूरवीर हैं, जो सिंह के समान निर्भीक हैं , जो श्रेष्ठ हैं , देश, कुल, जाति से शुद्ध हैं , सौम्य मूर्ति हैं, अंतरंग व बहिरंग परिग्रह से रहित हैं, आकाश के समान निर्लेप हैं ऐसे आचार्य परमेष्ठी होते हैं। उनके गुणों में अनुराग रखते हुए उनकी जो भक्ति की भावना की जाती है वह आचार्य भक्ति भावना है ।

- आचार्य परमेष्ठी एक ऐसे शिल्पीकार होते हैं जो शिष्य रुपी पाषाण पर अपनी प्रज्ञा रुपी पैनी - छैनी की ठोकर दे - देकर एक मूर्ति रुप में परिणत कर देते हैं ।

- जो संघ के संग्रह अर्थात् दीक्षा और निग्रह में कुशल हैं, परमागम के अर्थ में विशारद हैं, जिनकी कीर्ति सब जगह फैल रही है जो सारण (आचरण), वारण (निषेध) और साधन अर्थात् व्रतों की रक्षा करने वाली क्रियाओं में उद्यत हैं वे आचार्य परमेष्ठी हैं ।

- आचार्य परमेष्ठी ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप व वीर्य इन पंचाचारों का पालन स्वयं करते हैं व शिष्यों से पालन कराते हैं ।

- ये आचार्य परमेष्ठी अनेक कष्टों को सहकर भी हित का, मोक्षमार्ग का उपदेश देते हैं अत: हमारे परमोपकारी हैं ।

- आचार्यों के प्रसाद से ही विद्या व मंत्र की सिद्धि होती है ।

- कठिन परिस्थितियों के उपस्थित हो जाने पर आचार्य परमेष्ठी / गुरुजन ही संबल व साहस देते हैं ।

- गुरु ही विधाता / भाग्य निर्माता हैं , गुरु ही दाता हैं , गुरु ही स्वकीय बंधु हैं , गुरु ही गुण रुपी रत्नों के सागर हैं, गुरु ही शिक्षक हैं तथा कर्म समूह को नष्ट करने वाले गुरु ही मोक्ष हैं ।

- गुरु ही देव हैं, गुरु ही पिता हैं , गुरु ही माता हैं, व गुरु ही हितरुप होते हैं ।

- विद्वान मनुष्य भी गुणों के सागर स्वरुप गुरुओं के बिना तत्व को नहीं जानता है क्योंकि अपने कानों तक उज्ज्वल लंबे नेत्र वाला भी मनुष्य दीपक के बिना अंधकार में कुछ नहीं देखता है ।

- यदि कोई गुरु के लिए नगर और ग्राम सहित संपूर्ण पृथ्वी देता है तो भी वह पुरुष ऋण मुक्त नहीं हो सकता ।

- गुरु के बिना कोई भी भव्यजीवों को संसार से तारने वाला एवं मोक्षमार्ग पर ले जाने वाला नहीं है अत: श्री गुरु, सत्पुरुषों के सेवनीय हैं ।

- मनोवांछित कार्य की सिद्धि के लिए, संशय रुपी अंधकार को नष्ट करने के लिए तथा इहलौकिक व पारलौकिक सुख के लिए गुरु की सेवा करनी चाहिए ।

- भक्ति से परिपूर्ण जो शिष्य गुरु के वचन को प्रमाण करते हैं - स्वीकृत करते हैं उन्हें स्वर्ग और मोक्ष संबंधी सुख अनायास ही प्राप्त हो जाता है ।

- स्वयं ज्ञात अर्थ को भी गुरुओं से नित्य पूछते रहना चाहिए क्योंकि उनके द्वारा निश्चय को प्राप्त कराया गया अर्थ परम सुख को देता है।
- जहाँ गुरु का अपवाद या निंदा चल रही हो वहाँ कान ढक लेना चाहिए या अन्यत्र चले जाना चाहिए।
- गुरु, शिष्य के अनुशासक होते हैं क्योंकि वे शिष्यों को अनुशासन में रखते हैं । अनुशासक कठोर भी होते हैं और वे जितने कठोर होते हैं वास्तविकता में उतने ही वे हमारे जीवन का सच्चा व अच्छा निर्माण करने वाले होते हैं।
- गुरु विहीन जीवन बुझे दीपक की भांति है।
- गुरु अंधकार को समाप्त करने वाले होते हैं।
- गुरु के बिना जीवन में सम्यक् ज्ञान संभव नहीं है।
- गुरु विहीन जीवन खुशबू रहित पुष्प के सदृश है।
- गुरु ही मोह से निर्मोहता की ओर ले जाते हैं।
- गुरु के बिना मोक्ष मार्ग नहीं मिल सकता है।
- गुरु का सहारा जीवन में सर्वोत्कृष्ट है।
- गुरु मोक्षमार्ग के पथिक तथा पाथेय देने वाले होते हैं।
- गुरु उन्मार्ग से सन्मार्ग की ओर लाते हैं।
- गुरु खेवटिया हैं जो संसार समुद्र से पार कराते हैं।
- गुरु ही बोध प्रदान करते हैं।
- गुरु अंधकार से प्रकाश की ओर लाते हैं।

- गुरु जीवन के सर्वोपरि होते हैं।
- गुरु नारियल की तरह होते हैं जो बाहर से कठोर अंदर से मुलायम होते हैं।
- गुरु एक कुम्हार की तरह होते हैं जो कि अपने शिष्यों को बाहर से ठोकते और अंदर से हाथ लगाये रहते हैं।
- गुरु के बिना जीवन शुरु नहीं होता है।
- गुरु हमारे जीवन में उन्नति एवं उत्थान के पथ प्रशस्त करते हैं।
- जिसके जीवन में गुरु की कृपा है, उसका कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता।
- गुरु अंधों के लिये आँखें व लंगड़े के लिये पैर होते हैं।
- गुरु ज्ञान रुपी अंजन को आँखों में लगाकर अज्ञानी अँधे को नेत्र प्रदान करते हैं।
- शिष्य के जीवन को सुसज्जित करने वाले गुरु होते हैं।
- गुरु शब्द में दो अक्षर होते हैं गु एवं रु, "गु" का अर्थ है, अंधकार एवं 'रु' का अर्थ निवारण अर्थात् जो अंधकार का निवारण करें।
- गुरु जीवन को सम्यग्दर्शन रुपी ज्योति से जाज्वल्यमान करते हैं।
- गुरु हमारे गिरे उत्साह को उठाते हैं।

" बहुश्रुत भक्ति भावना "

- जो बारह अंगों के पारगामी होते हैं वे बहुश्रुत (उपाध्याय) कहे जाते हैं उनके द्वारा उपदिष्ट आगमार्थ के अनुकूल प्रवृत्ति करने या उक्त अनुष्ठान के स्पर्श करने को बहुश्रुत भक्ति कहते है ।
- जो निरंतर पठन - पाठन में संलग्न रहते हैं , स्वयं पढ़ते रहते हैं श्रुताभ्यास मे संलग्न रहते हैं तथा संघस्थ मुनिजनों को श्रुता - भ्यास कराते हैं वे बहुश्रुत उपाध्याय परमेष्ठी कहलाते हैं ।
- विद्या पात्रापात्र का विवेक रखकर दी जाती है ।
- पात्र को दिया गया थोड़ा सा भी ज्ञानदान उसके जीवन मैं कल्पवृक्ष की तरह फली भूत होगा ।
- अपात्र को दिये गये ज्ञान की कुछ कीमत नहीं हो पाती ।
- जो उपाध्याय परमेष्ठी की भक्ति में संलग्न रहते हैं वे वास्तव में श्रुत के मूल्य को जान पाते हैं । श्रुत की परम व सच्ची आराधना कर पाते हैं ।
- उपाध्याय परमेष्ठी संपूर्ण अज्ञान रुपी अंधकार को नष्ट कर जीवन में ज्ञान के प्रकाश को भर देते हैं ।
- उपाध्याय परमेष्ठी की भक्ति, विनय से व्यक्ति श्रुत पारगामी, विद्या - विशारद बन जाता है ।
- उपाध्याय परमेष्ठी - बहुत सारे शास्त्रों का अध्ययन मंथन करके, आत्मसात करके जनमानस के लिए मक्खन प्रदान करते हैं ।
- ऐसे महान उपाध्याय परमेष्ठियों की सेवा, भक्ति, वैय्यावृत्ति का सौभाग्य मिल जाये तो अपने को अहोभाग्य मानना चाहिए ।
- शिक्षक बोध तो दे सकते हैं परंतु बोधि नहीं ।

- बोधि अर्थात् रत्नत्रय जो अत्यंत दुर्लभ है वह भी उपाध्याय परमेष्ठी की कृपा से सुलभ हो जाता है ।
- उपाध्याय परमेष्ठी नि:स्वार्थ भावना से तथा श्रुत भक्ति से प्रेरित होकर आगम के अमृत का रसास्वादन कराते हैं ।
- एक अक्षर का ज्ञान देने वाले भी गुरु के उपकार को कभी नहीं भूलना चाहिए ।
- जैसे बीज किसान बोता है वैसे ही फल को पाता है । जिसने उपाध्यायों की भक्ति रुपी बीज को बोया है वह उनके प्रसाद से अपूर्व श्रुतज्ञान रुप फल को पाता है ।
- जो संत जन गुरु उपदेश को छोड़कर तंत्र - मंत्र, ज्योतिष, आयुर्वेद के चक्कर में पड़ जाते हैं उनका घर छोड़कर निकलना व्यर्थ ही है ।
- श्रुत देवी जिन पर सदा प्रसन्न रहती है, ऐसे बहुश्रुतों की भक्ति जीवन में सम्यग्ज्ञान का उजास कर, मिथ्यात्व रुपी अंधकार को नष्ट करती है ।
- जिनके माध्यम से हमारे ज्ञान कपाट खुले हैं उन उपाध्याय आदिकों की भक्ति में अहर्निश तत्पर रहते हुए उनके उपकारों का सदा स्मरण करते रहना चाहिए ।
- जो प्राणी एक अक्षर, आधे पद अथवा एक पूरे पद के प्रदान करने वाले गुरु को भूल जाता है, उनके उपकार को नहीं मानता, वह पापी है । फिर भला जो धर्मोपदेश बहुश्रुत आदि गुरु को भूलता है उसके विषय में क्या कहा जाए ? वह तो महापापी है ।
- बहुश्रुत का सम्मान करने से श्रुत का सम्मान होता है, श्रुत का सम्मान होने पर , श्रुत प्रदाता श्री जिनदेव की वाणी का सम्मान होता है तथा जिनवाणी का जहाँ सम्मान होता है वहाँ सुख, संपत्ति व आनंद का वास होता है ।

" प्रवचन भक्ति भावना "

- सिद्धान्त या बारह अंगों का नाम प्रवचन है, क्योंकि प्रकृष्ट सिद्धान्त या बारह अंगों का नाम प्रवचन है ।
- रत्नत्रय को भी प्रवचन कहते हैं ।
- प्रकृष्ट है वचन जिनके ऐसे आत्म प्रवचन कहलाते हैं अथवा आत्म के वचन रुप परमागम को प्रवचन कहते हैं अथवा प्रमाण के द्वारा जिसका निरुपण किया जाता है ऐसे पदार्थ प्रवचन हैं । इस प्रकार निरुक्ति के द्वारा प्रवचन के आप्त, आगम और पदार्थ ये तीन अर्थ होते हैं ।
- प्रवचन में भक्ति रुप भावना रखना प्रवचन भक्ति भावना है ।
- जो व्यक्ति शास्त्रों को तो पढ़ लेते हैं परंतु आत्मा को नहीं जानते, वे लोग भी जड़ ही हैं तथा निश्चय से वे जीव निर्वाण को नहीं पाते ।
- जो मनुष्य उत्तम गुरु के द्वारा प्ररुपित समीचीन शास्त्रों को नहीं पढ़ते हैं , उन्हें बुद्धिमान मनुष्य दोनों नेत्रों से युक्त होने पर भी अंधा ही समझते हैं ।
- शास्त्रों को पढ़ने से तत्वों का अच्छा अभ्यास होता है, प्रशम गुण बढ़ता है, वैराग्य की वृद्धि होती है, प्रभावना होती है और एकान्त वादियों का मान मर्दन होता है ।
- शास्त्रों को पढ़ते समय मन समीचीन अर्थ में, वचन शब्द के उच्चारण में, नेत्र अक्षर पर और कान उन अक्षरों के सुनने में लीन रहते हैं , अन्य नासिका और स्पर्शन ये दो इंद्रियाँ उस समय निष्क्रिय रहती है, अत: शास्त्रों को पढ़ने में मानसिक एकाग्रता अधिक होती है ।
- शास्त्रों को पढ़ने से आत्मा को भोजन मिलता है, चिंतन शक्ति

बढ़ती है और चिंतन से मक्खन निकलता है जिससे आत्मा आनंदित हो जाती है ।

- शास्त्र स्वाध्याय में जब नई - नई बातें निकलती हैं तो मन आनंदित, गद्‌गद् हो जाता है अत: यह मानसिक प्रसन्नता का भी कारण है ।
- शास्त्र स्वाध्याय से चित्त निर्मल होता है फल स्वरुप परिणाम विशुद्धि बढ़ती है और गुणश्रेणी रुप से कर्मो की निर्जरा होती है ।
- प्रवचन के माध्यम से आत्मालोकन या अन्वेषण होता है ।
- श्रुत सेवा में अहर्निश तत्पर रहना भी प्रवचन भक्ति है ।
- प्रवचन भक्ति ही परंपरा से ज्ञानावरण के क्षय का हेतु बनती है ।
- यदि जिनवाणी फट रही है तो उस पर कवर चढ़ादे, बाईंडिंग कर दें तथा यथास्थान पर उसे रखे, अछावर आदि में रखे तथा पूर्ण शुद्धि के साथ शास्त्रों को पढ़ना यब सब प्रवचन भक्ति है ।
- गुरु मुख से उपदेश को एकाग्र चित्त से सुनना भी प्रवचन भक्ति है ।
- प्रवचन भक्ति के माध्यम से ही व्यक्ति को दुर्लभ बोधि की प्राप्ति होती है ।
- अल्पज्ञान के अभिमान में आकर प्राचीन शास्त्रों में काट - छाँट / सुधार करना अथवा अपनी मन माफिक बातें जोड़ देना श्रुत का अविनय, अवर्णवाद है जिससे ज्ञानावरणी व दर्शनावरणी कर्म का आश्रव बंध होता है अत: ऐसी कुचेष्टा कदापि नहीं करना चाहिए ।
- आगम को पढ़ता हुआ भी जो विषय, कषायों से युक्त है उसका सब शास्त्र स्वाध्याय करना मात्र बोझा ढोना है ।

" आवश्यकापरिहाणी भावना "

- जो कषाय राग - द्वेष आदि के वशीभूत न हो वह अवश है, उस अवश का जो आचरण है वह आवश्यक है ।
- आवश्यक शब्द की निरुक्ति है - व्याधि, रोग, अबलापन इत्यादि विकार जिसमें हैं ऐसे व्यक्ति को अवश कहते हैं ऐसे व्यक्ति को जो क्रियाएँ करना योग्य है उनको आवश्यक कहते हैं ।
- साधुओं को सामायिक, चतुर्विंशति स्तव, वंदना, प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग और ध्यान ये छह आवश्यक सदा करना चाहिए ।
- छह आवश्यक क्रियाओं का यथा काल पालन करना आवश्यका -परिहाणि भावना है ।
- देव पूजा, गुरु उपास्थि, स्वाध्याय, संयम, तप, दान ये श्रावकों के छह आवश्यक हैं ।
- जहाँ विवेक व समझदारी से काम नहीं लिया जाता है वह कर्तव्य भी अकर्तव्य बन जाता है ।
- कर्तव्य से विहीन ज्ञान, ज्ञान नहीं क्योंकि मात्र कर्तव्य ही प्रयोजनीय नहीं है , और अकेला ज्ञान भी प्रयोजनीय नहीं है ।
- ज्ञान हीन क्रिया व्यर्थ है और क्रियाहीन ज्ञान भी व्यर्थ है ।
- जिस समय जो कार्य आवश्यक हो उस समय वही कार्य करना तथा जो आवश्यक नहीं है वह नहीं करना यही आवश्यकापरिहाणी भावना है ।
- भगवान की पूजा श्रावक का पहला कर्तव्य है । पहले देव पूजा फिर काम दूजा ।

- जो कर्तव्य शील होते हैं उन्हें भोजन के पहले भगवान की पूजा प्रधान होती है ।
- सभी आवश्यकों का पालन यथा योग्य रीति से यथा काल ही करना चाहिए ।
- कर्तव्यों के प्रति जाग्रत रहने वाला उपलब्धि पाता है ।
- यद्यपि करणीय कार्य बहुत हैं पर उनमें से अवश्य करने योग्य जो षट् आवश्यक कर्तव्य हैं उन्हें विधि पूर्वक अवश्य ही करते रहना चाहिए ।
- निरंतर अपने आवश्यक कर्तव्यों को पूर्णत: पालन करने की भावना बनाये रखना आवश्यकापरिहाणि भावना है । जो कि तीर्थंकर प्रकृति के बंध का कारण है ।
- जो यथायोग्य रीति से, यथाकाल में अपने आवश्यक कर्तव्यों का पालन नहीं करता है वह देव दुर्गति को प्राप्त करता है ।
- कण्ठगत प्राण आ जाने पर भी अहर्निश अपने कर्तव्यों को करते ही रहना चाहिए ।
- निर्दोष, निरतिचार आवश्यकों के परिपालन से जीव सुगति में गमन करता है ।
- जिस समय मन में कल्याण करने के भाव जाग्रत हों उसी समय कदम कल्याण पथ की ओर अग्रसर कर देना चाहिए ।
- जो श्रावकोचित आवश्यक कर्तव्यों का अहर्निश पालन करते हैं वे ही एक दिन मुनियों के षट् आवश्यकों को पालने की योग्यता प्राप्त कर पाते हैं ।
- आवश्यक कर्तव्यों में जो सतत् लीन हैं ऐसा मुनि ध्यान रुप आवश्यक के बल से एक दिन संपूर्ण कर्मों का क्षय कर निर्वाण को प्राप्त कर लेता है ।

- व्याधि, दुर्बलता, कमजोरी, उपवास यहाँ तक कि सल्लेखना आदि जैसी अवस्था उपस्थित होने पर भी जो टाले नहीं जा सकते, जिनका करना अत्यंत अनिवार्य ही है वे आवश्यक कर्तव्य कहलाते हैं।
- कर्तव्यों में अटल, अडिग रहने वाला ही एक दिन साधना के समीचीन फल को पाता है।
- कर्तव्य शील सदैव प्रसन्न चित्त व आनंदित रहता है।
- कर्तव्यनिष्ठा जीवन विकास के सूत्रों को प्रदान करती है।
- कर्तव्यों का पालन करते रहने से जीवन प्रणाली सुखवयस्थित रहती है।
- कर्तव्य बोध जहाँ प्रारंभ हो जाता है वहाँ किसी कार्य के लिए प्रेरणा नहीं देनी पड़ती अपितु व्यक्ति कार्य करने स्वयं तत्पर रहता है।
- कर्तव्यशील कार्य करने हेतु अवसर ढूढ़ता है तथा कर्तव्य विहीन कहने - कहने पर भी नहीं करते।
- कर्तव्यनिष्ठ व्यक्ति को कहीं भी कष्ट नहीं जहाँ भी वह जाता है प्रेम, वात्सल्य, सम्मान पाता है।

" मार्ग - प्रभावना "

- अज्ञान रुपी अंधकार के विनाश को जिस प्रकार बने उस प्रकार से दूर करके जिन मार्ग का समस्त मतावलम्बियों में प्रभाव प्रकट करना सो प्रभावना है।
- आगमार्थ का नाम प्रवचन है उसका वर्णन अर्थात् कीर्ति विस्तार या वृद्धि करने को प्रवचन की प्रभावना और उसके भाव को प्रवचन प्रभावना कहते हैं।
- पर समय रुपी जुगनुओं के प्रकाश को पराभूत करने वाले ज्ञान रवि की प्रभा से इंद्र के सिंहासन को कंपा देने वाले मासोपवासादि सम्यक् तपों से तथा भव्यों के हृदय रुपी कमलों को विकसित करने के लिए सूर्य प्रभा के समान जिन पूजा के द्वारा सद्धर्म का प्रकाश करना मार्ग प्रभावना है।
- महापुराणादि धर्म कथा के व्याख्यान करने से, हिंसादि दोष रहित तपश्चरण करने से, जीवों की दया व अनुकंपा करने से आदि के माध्यम से जिन धर्म की प्रभावना करनी चाहिए।
- परवादियों को जीतना, अष्टांग निमित्त ज्ञान, पूजा, दान आदि के माध्यम से भी प्रभावना की जा सकती है।
- व्यक्ति विशेष या व्यक्तित्व की प्रभावना धर्म प्रभावना नहीं अपितु प्रभावना का अर्थ धार्मिकता है।
- प्राणी मात्र को धर्म के प्रति जागरुक कर देना उनके अंदर धार्मिकता का प्रादुर्भाव कर देना ही वास्तविक धर्म प्रभावना है।
- अप्रभावना के हेतुओं से बचने का उद्यम ही प्रभावना को उत्पन्न कराता है।

- संतों की चर्या ही प्रभावना का अंग बन जाती है ।
- अपनी आत्मा से प्रभावित हो जाना ही प्रभावना है ।
- सम्यक् प्रकार से, नि:कांक्षित भावना से की गई दान, पूजा, तप, त्याग, व्रत, नियम, संयम आदि क्रियाएँ प्रभावना का अंग बनती हैं ।
- जिन व्यक्तियों के अंदर धर्म नहीं है, धार्मिकता नहीं है तो मात्र बाह्य आडंबर, बाह्य वेश प्रभावना का हेतु नहीं बनते ।
- जहाँ दिखावा है वहाँ धर्म नहीं, जहाँ धर्म नहीं वहाँ धार्मिकता नहीं और जहाँ धार्मिकता नहीं वहाँ प्रभावना कैसे हो सकती है ?
- दान, तप और पूजा व विद्या यानि ज्ञान यह प्रभावना के व्यवहारिक अंग हैं ।
- महाव्रत रुप दीक्षादि के माध्यम से जो प्रभावना होती है वह मोक्ष मार्ग की प्रभावना है। क्योंकि उसी से मोक्षमार्ग की वृद्धि होती है ।
- जो स्वयं धर्म से भीगा है धर्म से प्रभावित है वही दूसरे को प्रभावित कर सकता है ।
- जो गुणी जनों, धार्मिक जनों को देखकर हृदय में आल्हाद रुप परिणाम होते हैं, उनमें प्रीति उत्पन्न होती है वही प्रभावना का वास्तविक लक्षण है ।
- अपने नाम, प्रशंसा, प्रतिष्ठा के लिए धर्म का बाना ओढ़ना प्रभावना नहीं है ।
- जिस प्रकार दीप से दीप जलते हैं उसी प्रकार धार्मिकता से ही धार्मिकता का विकास होता है यही धार्मिक विकास ही सच्ची प्रभावना है ।

- यदि हमारे उपदेश से एक व्यक्ति का भी हृदय परिवर्तित होता है, और वह धर्म के पथ पर अपने कदम अग्रसित कर लेता है तो यही वास्तविक मार्ग प्रभावना है ।
- स्वयं को आत्म धर्म से प्रभावित कर लेना ही सच्ची प्रभावना है ।
- पूजन, विधान, पंचकल्याणक प्रतिष्ठा, जाप्यानुष्ठान, भजन आदि के माध्यम से जिन धर्म को प्रकाशित करना मार्ग प्रभावना है ।
- किसी को सदुपदेश देकर उसके अंदर के मिथ्यात्व को हटाकर सम्यकत्व रुप प्रकाश को उद्योतित कर देना ही सच्ची मार्ग प्रभावना है ।
- श्री महावीर भगवान के संदेशों को जन - जन तक पहुँचाना भी प्रभावना का अंग बनता है ।
- साधु संतों की निर्मल चर्या, मौन वृत्ति भी प्रभावना का बहुत बड़ा अंग बनती है ।
- मार्ग प्रभावना हेतु प्राणों का त्याग भी करना पड़े तो भी सतत् तैयार रहना चाहिए ।

" प्रवचन वात्सल्य भावना "

- चतुर्गति रुप संसार से तिरने में कारण भूत मुनि आर्यिका आदि चार प्रकार के संघ में उसी तरह से प्रीति रखना चाहिए जिस तरह से बछड़े में गाय की प्रीति होती है यही वात्सल्य गुण है ।
- उक्त प्रवचनों अर्थात् सिद्धांत या बारह अंगों में अथवा उनमें होने वाले देशव्रती, महाव्रती व असंयत सम्यग्दृष्टियों में जो अनुराग, आकांक्षा अथवा अभेद बुद्धि होती है उसका नाम प्रवचन वात्सल्य है ।
- जो सम्यग्दृष्टि जीव प्रिय वचन बोलता हुआ अत्यंत श्रद्धा से धार्मिक जनों में भक्ति रखता है तथा उनके अनुसार आचरण करता है उस भव्य जीव का वात्सल्य गुण कहा है ।
- छल या आकांक्षा को लेकर की गई प्रीति, अनुराग यह वात्सल्य अंग नहीं है ।
- नि:स्वार्थ व निश्छल भाव से समूह के बीच में सद्भावना बनाये रखना तथा यथा योग्य साधर्मियों का आदर - सम्मान करना भी वात्सल्य है ।
- जहाँ पारस्परिक समर्पण व लघुता का भाव होता है वहाँ वात्सल्य का प्रादुर्भाव होता है ।
- अहंकार तोड़ता है लघुता जोड़ती है । जहाँ अभिमान की तेज हवाये चल रही हो वहाँ वात्सल्य का दिया अधिक समय तक नहीं जल सकता ।
- जहाँ अपेक्षायें व आकांक्षायें समाप्त हो जाती हैं वहाँ वात्सल्य चिरस्थायी हो जाता है ।

- जहाँ दूसरे से अपेक्षायें रहती हैं वहाँ नि:स्वार्थ प्रीति नहीं हो सकती ।
- निज आत्मगुणों में प्रीति हुये बिना वात्सल्य संभव नहीं ।
- धर्मात्मा के गुणों को देखकर प्रमुदित हो जाना वात्सल्यता का परिचायक है ।
- जिसके अंतस में वात्सल्य भाव नहीं है वह न तो धर्मात्मा है और न ही दर्शन, ज्ञान, चारित्रवान है ।
- वात्सल्य अंग के अभाव में टूटना व तोड़ना होता है तथा वात्सल्य के सद्भाव में जुड़ना व जोड़ना प्रारंभ होता है ।
- वात्सल्य अंग का धारी दूसरे की उन्नति से ईर्ष्या नहीं करता अपितु उन्नति में सहयोगी बनता है ।
- कोई व्यक्ति किसी क्षेत्र में उन्नति करता है तो उसके पैर पकड़कर खींच लिये जाते हैं यानि उसकी निंदा या बुराई उसको गिराने, पतित करने का प्रयास किया जाता है अथवा उसके सामने ऐसी बाधा खड़ी कर दी जाती है जिससे वह आगे न बढ़ पाये, उन्नति न कर पाये ये सब अवात्सल्य के लक्षण हैं ।
- जिसका हृदय विशाल, गंभीर चित्त, धैर्यशीलता, सहिष्णुता, विचारों में गहराई है वही वात्सल्य अंग को धारण कर सकता है । लड़ाई, झगड़े, विघटन, वाद - विवाद करने वाले व ईर्ष्यातु नहीं ।
- जिसके विचारों में संकीर्णता है, अधैर्य, असहिष्णुता तथा चंचलता है वह वात्सल्य को धारण नहीं कर सकता ।
- प्रेम का, आनंद का जीवन ही वात्सल्य है, तथा विघटन और दु:ख का जीवन ही अवात्सल्य है । एकता व संगठन का जीवन ही वात्सल्य पूर्ण है तथा विघटन का जीवन अवात्सल्यता का जीवन है ।

" अनित्यानुप्रेक्षा "

- चाहे परिजन हो या कुटुम्बी जन, धन दौलत हो या शरीर एक क्षण के उपरांत सब कुछ विलीन हो जाता है ।
- जो लक्ष्मी पुण्यशाली चक्रवर्तियों के भी सदा नहीं रहती वह भला पुण्यरहित अन्य साधारण जनों से प्रेम कैसे कर सकती है ।
- समस्त विषयों को क्षण भंगुर जानकर, महामोह रुपी सुभट को जीतो व मन को विषयों से रहित करो यही उत्तम सुख पाने का अमोघ उपाय है ।
- आज तक हमने छाया को पकड़ने का प्रयत्न किया है, पानी के बबूलों को पकड़ने का प्रयास किया है, मिट्टी के घरौंदे को स्थायित्व देने की कल्पना की है, उसी में उपयोग लगाया है परंतु शाश्वत निज आत्म वैभव को नहीं जाना ।
- मौत का कोई भरोसा नहीं, कब तुम्हें ग्रास बना ले । चाहे राजा हो या रंक, अमीर हो या गरीब, वृद्ध हो या बालक मौत किसी को नहीं छोड़ती, मौत बचपन और पचपन को नहीं देखती । अतः जीवन में मौत रुपी यमराज तुम्हें ग्रसने आए, उसके पूर्व ही अपने जीवन को धर्म से सुसज्जित कर लो ।
- पदार्थ को क्षणभंगुर जान के लेने के बाद छोड़ना आसान होता है ।
- आज तक इस जीव ने इंद्रधनुष को ही शाश्वत माना है, बादल के महलों को वास्तविक जाना है, आकाश की बिजली को स्थिर माना है परंतु जब वास्तविक ज्ञान होता है तो संसार का नक्शा दिखने लगता है तथा बादल, बिजली, इंद्र धनुष व पानी के बुलबुले सब क्षणभंगुर नजर आने लगते हैं ।

- अशाश्वत में शाश्वत की कल्पना ही सबसे बड़ा भ्रम है ।
- वास्तव में ज्ञान, दर्शन स्वभावी एक आत्मा ही शाश्वत है शेष अन्य पदार्थ नहीं, वे तो संयोगी अवस्थाएँ हैं ।
- हे प्राणी ! तू यौवन धन और घर आदि का अभिमान मत कर क्योंकि यह काल तेरे इस यौवन धन आदि सबको हरण कर लेगा । यह धन, यौवन आदि सब इंद्रजाल के समान निष्फल है यही समझकर हे जीव ! तू इनका त्याग कर और मोक्षपथ की गवेषणा कर ।
- यह संसार नीलकमल के पत्ते पर पड़े हुए जल के समान चंचल तथा क्षणभंगुर है, यदि इसमें रचोगे तो शाश्वत आनंद से वंचित रह जाओगे ।
- जब संसार की अनित्यता, क्षणभंगुरता का ज्ञान होता है तो वैराग्य उत्पन्न होता है, मोह व आसक्तियाँ टूटने लगती हैं, अज्ञान छूटता है तथा जीवन में ज्ञान का प्रकाश होता है ।
- अशाश्वत से शाश्वत की ओर, अनित्य से नित्य की ओर असत् से सत् की ओर अशांति से शांति के पथ की ओर अग्रसर होने वाला ही, शाश्वत आलय - ' शिवालय ' (मोक्ष) को पाता है ।
- आज जो है वह कल नहीं रहेगा यह प्रकृति का शाश्वत सिद्धान्त है ।
- क्षीर नीर की तरह, एकमेक रहने वाला, जीव से संबद्ध यह शरीर भी जब शीघ्र ही नष्ट हो जाता है तो फिर भोगोपभोग की सामग्रियाँ कैसे शाश्वत रह सकती हैं ।
- जब अहमिन्द्रों के पद व बलदेव आदि की पर्यायें भी नाश्वान हैं तो फिर संसार में कौन सा ऐसा पद या पर्यायें है, जो शाश्वत व ध्रुव रह सकती हैं ।

- निश्चय नय से जो आत्मा देवेन्द्र, असुरेन्द्र, मनुष्येन्द्र अर्थात् चक्रवर्ती की विभूति, धन, दौलत, रत्न, खजाने, सेना आदि से रहित है , वही हमारी आत्मा है तथा शाश्वत रहने वाली है ।
- परिवर्तन ही प्रकृति का नियम है ।
- पर्याये बदलती है द्रव्य शाश्वत रहता है ।
- अनित्य को नित्य मान बैठना ही हमारी सबसे बड़ी अज्ञानता है ।
- जिस प्रकार आकाश में बना बादलों का महल क्षण भर में विलीन हो जाता है । उसी प्रकार ये मनुष्यादि पर्याये भी नष्ट हो जाती है । एक मात्र आत्मतत्व ही शाश्वत रहता है अत: उसी का आश्रय ग्रहण करना चाहिए ।
- बहिरात्मा का लक्षण है कि वह खोजता है अशाश्वत में शाश्वत को, अनित्य में नित्य को, पर्यायों में द्रव्य को । इसीलिए घूमता है इस संसार रुपी महावन में ।
- जिसे अपनी मृत्यु नजर आने लगती है वही शाश्वत सुख की पाने हेतु उद्यमशील होता है ।
- नित्यता का सही परिज्ञान न होने से प्राणी मकड़ी की तरह जाला बुनता है और उसी में फंसकर मर जाता है ।

" अशरण - अनुप्रेक्षा "

- यह काल का जाल अथवा फंदा ऐसा है कि क्षण मात्र में जीवों को फंसा लेता है और सुरेन्द्र, असुरेन्द्र, नरेन्द्र तथा नागेन्द्र भी इसका निवारण नहीं कर सकते हैं ।
- यह काल जैसे बालक को ग्रसता है, वैसे ही वृद्ध को भी ग्रसता है, जैसे धनाढ्य को ग्रसता है उसी प्रकार दरिद्र को भी तथा जैसे शूरवीर को ग्रसता है उसी प्रकार कायर को भी, जगत के सभी जीवों को समान भाव से ग्रसता है किसी में भी इसका हीन अधिक विचार नहीं है ।
- यदि अपना कोई कुटुम्बी जन अपने कर्म वशात् मरण को प्राप्त हो जाता है तो नष्ट बुद्धि मूर्खजन उसका शोक करते हैं परंतु स्वयं यमराज की दाढ़ों में आया हुआ है, इसकी चिंता कुछ भी नहीं करता यह बड़ी भारी मूर्खता है ।
- काल रुप सर्प से सेवित संसार रुपी वन में पूर्व काल में अनेक पुराण पुरुष (श्लाका - पुरुष) प्रलय को प्राप्त हो गये, उनका विचार कर शोक करना वृथा है ।
- यह काल का जाल अथवा फंदा ऐसा है कि क्षण मात्र में जीवों को फंसा लेता है और सुरेन्द्र, असुरेन्द्र तथा नागेन्द्र भी इसका निवारण नहीं कर सकते हैं ।
- जिस प्रकार वन में भ्रमण करते हुए सिंह के पैरों में आये हुए हिरण को मृत्यु से बचाने वाला कोई नहीं है उसी प्रकार जीव रुपी हिरण जो कि काल रुपी सिंह के चरणों में आ पहुँचा है, उसे बचाने में उसकी रक्षा करने में कोई भी समर्थ नहीं है ।

- अज्ञानी प्राणी सोचता है कि माता - पिता, पति, भाई, मित्र ये मेरे दुःख, विपत्ति में शरण होगें परंतु सत्य यह है कि ये सारे साथी तो हैं परंतु सुख दुःख के नहीं।
- तीनों लोक में वीतरागी देव के अलावा सरागी अन्य कोई भी इस जीव का रक्षक है, न भूत में हुआ न आगे होगा।
- षट्खंडाधिपति सुभौम चक्रवर्ती, बह्मदत्त चक्रवर्ती भी दुर्दैव से अकाल में मृत्यु के ग्रास बने उन्हें कोई नहीं रोक पाया, पाँचों पांडवों को गर्म - गर्म लोहे के कड़े पहनाकर मृत्यु का ग्रास बनाया गया कोई रक्षा नहीं कर पाया, तद्भव मोक्षगामी गजकुमार मुनिराज को अपने श्वसुर द्वारा उपसर्ग किया गया, अल्पायु में मरण को प्राप्त होने वाले उनको भी कोई परिजन नहीं बचा पाया। फिर हे भोले प्राणी ! सोच जरा, कि तू किस खेत की मूली है।
- प्राणी व्याधि रोग जनित दुःखों के भार से युक्त यमराज के घर ले जाये जाते हैं देव, गुरु, धर्म के बिना उन प्राणियों का रक्षक कौन है ? अर्थात् कोई नहीं।
- मुनियों ने मनुष्यों को दुःख शांत करने के लिए धर्म, ज्ञान, चारित्र, तप, वन आदिक को शरण भूत कहा है। इन्हें शीघ्रता से धारण कर लेना चाहिए।
- जिस प्रकार आक्रमण के भय से घर से धन निकाला जाता है उसी प्रकार यम के आक्रमण के भय से ही बुद्धिमान को धर्म का आचरण करना चाहिए।
- द्रव्य दृष्टि से शुद्धात्मा ही शरण है, व्यवहार दृष्टि से पंचपरमेष्ठी ही एक मात्र शरण हैं, परंतु मोह के उदय की विचित्रता तो देखो कि यह प्राणी संसार - समुद्र में पटकने वालों को ही

अपना शरण मान पंचपरावर्तन रुप संसार में भटकता है।

- यौवन वृद्धावस्था से व्याप्त है, शरीर व्याधियों का घर बना हुआ है, जन्म के साथ मृत्यु लगी हुई है। अर्थात् इस शरीर में कुछ भी सार नहीं है अतः स्वयं आत्मा को, आत्मा के लिए, आत्मा में देखते हुए अपनी आत्मा की शरण गहो। यही सुख का मार्ग है।
- जिनेन्द्र भगवान की शरण में आये बिना मोक्ष मार्ग नहीं मिल सकता।
- जिनेन्द्र भगवान की शरण ही सर्वोत्कृष्ट है।
- जहाँ संसार की समस्त शरण समाप्त हो जाती हैं वहाँ से ही जिनेन्द्र देव की शरण प्रारंभ हो जाती है।
- जिनेन्द्र भगवान की शरण लिये बिना आत्मिक वैभव की प्राप्ति संभव नहीं है।
- जिनेन्द्र भगवान की शरण संसार के दुःखों से छुटकारा दिला देती है।
- जिनेन्द्र भगवान की शरण संसार समुद्र से पार करा सकती है।
- जिनेन्द्र भगवान की शरण हमारे जीवन को पावन और पवित्र बनाती है।
- जिनेन्द्र भगवान की शरण सच्चे धर्म की शरण है।
- जिनेन्द्र भगवान की शरण से ही मोक्ष मिल सकता है।
- जिनेन्द्र भगवान की शरण से आत्मा की रक्षा संभव है।

" संसारानुप्रेक्षा "

- संसार का मार्ग सुख का हेतु नहीं होता अपितु सच्चा सुख तो जिनमार्ग / परमार्थ पर चलने से प्राप्त होता है ।
- अज्ञानता वश यह जीव निरंतर चतुर्गति रुप संसार में भ्रमण करता रहता है । परंतु कहीं भी सुख का लेश उसे प्राप्त नहीं होता ।
- ज्ञानी विचारता है - मोहवश मैंने सभी पुद्गलों को बार - बार भोगा और छोड़ा है अब जूठन के समान उन व्यक्त पदार्थों में मुझ बुद्धिमान की क्या इच्छा हो सकती है ? अर्थात् अब उनके प्रति इच्छा ही नहीं है ।
- हे आत्मन् ! जब तक काल तुझे नहीं ग्रसता है, जब तक तेरी वृद्धावस्था नहीं आती है और जब तक तेरी आयु क्षीण नहीं होती, तब तक तू कल्याण का आचरण कर अपने संसार को सीमित कर लें । यही बुद्धिमानी है ।
- कर्मोदय वशात् यह जीव कभी नारकी होता है कभी तिर्यंच कभी देवगति में जाता है तो कभी मनुष्य । सर्वत्र सुख की कामना करता है परंतु इस चतुर्गति रुप संसार में सुख की कल्पना अज्ञानता है ।
- ऐसा कौन सा क्षेत्र है जहाँ इस जीव ने जन्म न लिया हो, आकाश के प्रत्येक प्रदेश पर यह जीव अनेकों बार जन्म - मरण कर चुका है । ऐसा विचार करने से क्षेत्र, मेरा नगर, मेरा जन्म स्थान इत्यादि विषयक राग भाव नष्ट होता है ।
- यह जीव एक समय में अनंत पुद्गल परमाणुओं रुप कर्मों को ग्रहण करता है अर्थात् एक समय में अनंत परमाणु कर्म बंध

को प्राप्त होता है ऐसा जानकर प्रतिसमय परिणामों को संभालने का प्रयत्न करना चाहिए ।

- आठ अपकर्ष काल में ही आयु कर्म बंध को प्राप्त होता है तथा शेष कर्म प्रतिसमय बंधते रहते हैं । वह अपकर्ष काल आयु के त्रिभाग में आता है । ऐसे ८ बंधापकर्षों में आयु कर्म बंधता है अत: हर क्षण परिणाम निर्मल रखें । यही श्रुतज्ञान को पाने का सार है ।
- इस संसार में यह प्राणी कभी रुपवान हुआ तो कभी कुरुप कभी नाना तिर्यंच पर्यायों को प्राप्त हुआ तो कभी देवगति को कभी दरिद्र हुआ तो कभी धनवान, कभी बलवान हुआ तो कभी निर्बल । ऐसी कौन सी अवस्था है जिसे पंचपरावर्तन रुप संसार में परिभ्रमण करते हुए इस जीव ने प्राप्त न किया हो अत: इन विभिन्न अवस्थाओं में क्या शोक करना और क्या तोष ।
- ज्ञानी संसार की वास्तविक अवस्था को समझ लेता है अत: वैराग्य को धारण कर सतपथानुगामी बन जाता है तथा अज्ञानी सत्य का अन्वेषण न कर पाने से चकरी की तरह संसार के चक्र में फंस जाता है ।
- यह संसार मकड़ी के जाल की तरह है । जिस प्रकार मकड़ी स्वयं जाल बुनती है तथा स्वयं ही उसमें फंसकर मर जाती है उसी प्रकार यह प्राणी स्वयं के द्वारा बुने संसार जाल में स्वयं फंस जाताहै ।
- निश्चय नय की दृष्टि से कर्मों से सहित होना ही संसार है जो आत्मा ध्यान के बल से कर्मों का क्षय कर देती है उसका संसार भी नष्ट हो जाता है तथा आत्मा युक्त अवस्था को प्राप्त कर सिद्धालय में जा विराजती है ।

- संसार एक चक्रव्यूह है, इसमें प्रवेश करने की कला तो प्राय: सभी सीख जाते हैं परंतु अभिमन्यु की तरह इस चक्रव्यूह को तोड़ बाहर नहीं निकल पाते और अंतत: प्राणों को गंवाते हैं तथा लाख चौरासी के चक्कर लगाते हैं ।
- संसार एक समुद्र है जिसमें अज्ञानता वश यह प्राणी निरंतर गोते लगाता रहता है ।
- सुख - दु:ख रुप दो किनारों से सहित इस संसार रुपी दरिया में प्राणी निरंतर डुबकी लगाता है । परंतु उसपे पार नहीं हो पाता है ।
- संसार चतुर्गति रुप है चौरासी लाख योनि रुप है । और इनसे विराम होने पर ही संसार का अंत हो सकता है ।
- व्यक्ति के स्वयं की परिणति ही संसार है यदि कोई दिन रात राग द्वेष, काम क्रोधादि रुप प्रवृत्ति करता है तो निरंतर भटकन जारी रहती है अर्थात् वह दीर्घ संसारी हो जाता है और जब वही व्यक्ति अपनी परिणति को संभालता है वीतरागता रुप परिणामों में स्थित होता है तो संसार का अच्छेद कर देता है ।

" एकत्वानुप्रेक्षा "

- महा आपदाओं से भरे हुए दु:ख रुपी अग्नि से प्रज्ज्वलित और गहन ऐसे संसार रुपी मरुस्थल में यह जीव अकेला ही भ्रमण करता है कोई भी इसका साथी नहीं है ।
- जिसे जन्म - मरण प्राप्त होने पर सब ही जीव प्रत्यक्ष में अनुभवन करते हैं ऐसे उस एकत्व - स्वरुप को हे मूर्ख प्राणी ! तुम संसार रुपी पिशाच से पीड़ित हुए भी क्यों नहीं देखते ?
- जहाँ जीव ही देह से अन्य है, वहाँ गृहादिक एकत्व को कैसे प्राप्त हो सकते हैं ? अज्ञानी ही एक कहता है, तत्व का ज्ञाता नहीं ।
- जो कुबुद्धि कर्म से उत्पन्न होने वाले कुटुम्ब धन - धान्यादि सब को और शरीर को अपना मानता है वह कर्म को बांधता है ।
- हे भव्य ! यह प्राणी अकेला ही धर्म का उपार्जन कर स्वयं स्वर्ग को जाता है, पाप का उपार्जन कर प्राणी अकेला ही दु:खों की खान स्वरुप भयंकर नरक को प्राप्त होता है, अकेला ही अतिशय कठिन श्रेष्ठ चारित्र को धारण कर मोक्ष को प्राप्त होता है इसलिए तू एक धर्म की शरण को प्राप्त कर ।
- व्यक्ति हंस - हंस कर कर्म बांधता है तथा उदय में आने पर रो - रोकर समय निकालता है परंतु जो इस रहस्य को जान लेता है कि मैं अकेला ही कर्मों का करना वाला तथा उसके फलों को भोगने वाला हूँ तो आत्म जाग्रति होती है तथा एकत्वानुप्रेक्षा की अनुगूंज प्रारंभ हो जाती है ।

- एकत्व को प्राप्त हुआ आत्मा ही लोक में सबसे सुंदर है।
- पूरे प्रयत्न से शरीर से भिन्न एक जीव को जानो। उस जीव के जान लेने पर क्षण भर में ही शरीर, मित्र, स्त्री, धन, धान्य वगैरह सभी वस्तुएँ हेय हो जाती हैं।
- संसार की दशा देखते हुए भी अपने कुटुम्बीजनों से जीव का मोह नहीं छूटता है। इसका कारण है कि जीव अपने को अभी नहीं जान सका है। जिस समय वह अपनी शुद्ध चैतन्यमय आत्मा को जान लेगा, उसी समय उसे सभी परवस्तुएँ हेय प्रतीत होने लगेंगी।
- जो प्राणी एकत्व का आश्रय लेता है, वह किसी भी परिस्थिति के आने पर घबराता नहीं है, हर समय प्रशन्नता का अनुभव करता है।
- जो एकत्व में लीन है सदैव इस सत्य से आत्मा को भावित करता है उसके सब कुटुम्बीजन, माता - पिता, मित्र, भाई बंधु भी प्रतिकूल हो जाए तो भी समता को धारण करता है तथा आकुलता से रहित हो जाता है।
- यह जीव चतुर्गति रुप संसार में अकेला ही परिभ्रमण करता है, अकेला ही कर्म करता है तथा अकेला ही उन कर्मो के सुख - दुःख रुप फलों को भोगता है तथा कर्मो का क्षय कर अकेला ही मुक्ति को पाता है। जो इस सत्य को जान लेता है पर निमित्तों पर दोषारोपण नहीं करता।
- अनेकता हेय है, एकता ही उपादेय है।
- यह मेरा मित्र है, यह मेरा शत्रु है, यह मेरा हितैषी है। इत्यादि शत्रु - मित्र विषयक कल्पनाएँ एकत्वानुप्रेक्षा के अभाव में होती हैं।

- एकत्व स्वरुप आत्मा का अनुभव करने वाले की आत्मा में रागादि दोषों का अभाव हो जाने से शत्रु - मित्र की कल्पना ही नहीं होती।
- एकत्व में शाश्वत आनंद, परमानन्द है तथा अनेकता (पर में आत्म बुद्धि) में दुःख ही दुःख है। अतः उस शाश्वत आनंद को पाने एकत्व का आश्रय लेना ही श्रेष्ठ है।
- झगड़ा, राग - द्वेष दो में होता है एक अकेले में नहीं।
- जहाँ एकत्व का नीर प्रवाहित होता है वहाँ सुख - शांति, आनंद का अनुभव होता है।
- जिसने एकत्व के रहस्य को समझ लिया है वह दुनियाँ की भीड़ में रहता हुआ भी निज आत्म का विस्मरण नहीं करता। भीड़ में भी उस एकत्व - विभक्त आत्मा का अनुभव कर लेता है।
- दूसरों का परिचय तो बहुत बार पया परंतु दूसरों का परिचय लेते - लेते स्वयं से अपरिचित रह गये अतः अब परिचय पर का नहीं निज का पाना है। एकत्वानुप्रेक्षा की भावना भाने वाला ऐसी समीचीन चिंतन को प्राप्त करता है।

" अन्यत्वानुप्रेक्षा "

- मोह के गाढ़ संस्कारों के कारण प्राणी कुटुम्ब परिवार व धन दौलत के चक्रव्यूह में फंसा रहता है तथा आत्म कल्याण की भावना को भूल जाता है ।
- विश्व के चेतन - अचेतन आदि समस्त पदार्थों से भिन्न होता हुआ भी यह अज्ञानी, मोही आत्मा, राग - द्वेष मोह आदि परिणामों के प्रभाव से अपने को विश्वरुप करता है अर्थात् विश्व के समस्त पदार्थों को अपना मानता है, यह एक मात्र मोह का ही अध्यवसाय है ।
- संसार के ये सब संबंध क्षणभंगुर हैं , कभी भी विच्छेद को प्राप्त हो जाते हैं, अधिक से अधिक तब तक रहते हैं जब तक शरीर है । इस प्रकार संसार चक्र तो निरंतर चलता ही रहता है, ऐसा चिंतन करने वाला साधक एक दिन मोहान्धकार को नष्ट कर देता है ।
- जिस प्रकार शरीर से चमड़ी के अलग कर देने पर उसमें रोमकूप आधेय है । उसी प्रकार जब शरीर ही अपना नहीं तो उससे संबंध रखने वाले माता - पिता भाई, बंधु ये सब अपने कैसे हो सकते हैं ।
- आत्मा का स्वभाव चेतन - अचेतन आदि परभावों से भिन्न है, वह आत्म स्वभाव अनंत ज्ञानादि गुणों से परिपूर्ण है जब ऐसा ज्ञान जगता है तो पर, अन्य भावों से ममत्व घटता है ।
- जिस प्रकार स्वर्ण पाषाण में सोना, दूध में घी, तिल में तैल विद्यमान रहता है, वैसे ही इस शरीर में आत्मा विराजमान रहता है ।

- जिस प्रकार काष्ठ में अग्नि शक्ति रुप से विराजमान रहती है उसी प्रकार इस नश्वर शरीर में भगवान आत्मा विराजमान रहता है ।
- अन्यत्व भावना को भाने से अहंकार, ममकार भाव घटते हैं ।
- माता - पिता, भाई - बहिन, शरीर से संबंध रखने वाले स्त्री पुत्र तथा मित्रादि अपने निज कार्यवश (स्वार्थ वशात्) प्रवृत्ति करते हैं वास्तव में इन सबसे जीव का कोई भी संबंध नहीं है ।
- प्राय: संसारी प्राणी ऐसा मानते हैं कि जो मेरा नाथ था वह मर गया इत्यादि प्रकार से सोचता है, शोक करता है परंतु संसार में डूबती हुई अपनी आत्मा के विषय में नहीं सोचता, यह बड़ा आश्चर्य है ।
- ज्ञान व दर्शन स्वरुप ही आत्मा है तथा शरीरादिक बाह्य द्रव्य है मुझसे (आत्मा से) अन्य हैं , इस प्रकार अन्यत्व का हमेशा चिंतन करना चाहिए ।
- पक्षीगण नाना दिग्देशों से आकर रात्रि में एक वृक्ष पर बसेरा करते हैं तथा प्रात: काल होते ही सभी अपने - अपने अभीष्ट स्थानों को चले जाते हैं उसी प्रकार संसार के समस्त जीव नाना गतियों से आकर कर्मोदयानुसार एक ही कुटुम्ब परिवार में जन्म लेते हैं, एक साथ रहते हैं और अंत में मरकर अपने अपने कर्मों के अनुसार विभिन्न गतियों में चले जाते हैं । ऐसा चिंतन अन्यत्वानुप्रेक्षा को दृढ़ता प्रदान करता है ।
- शरीर, माता, पिता, घर - कुटुम्बादि सभी को अपनी आत्मा से भिन्न जानता हुआ भी यह अज्ञानी प्राणी उन्हीं में राग करता है यह बड़ी बिडम्बना है ।

" अशुचित्वानुप्रेक्षा "

- जो द्रव्य अत्यंत पवित्र, अपूर्व रस और गंध से युक्त तथा चित्त को हरने वाले हैं वे द्रव्य भी देह में रुकने पर अति घिनावने तथा अति दुर्गंध युक्त हो जाते हैं ।
- जो दूसरों के शरीर से विरक्त हैं और अपने शरीर से भी अनुराग नहीं करता है तथा आत्मा के शुद्ध चिद्रूप में लीन रहता है उसी के अशुचित्व में भावना है ।
- खेद है ! परद्रव्य में सुख की चाह से भटकता हुआ यह जीव आशा ही आशा में भटकता है, परद्रव्य को अपना मानता है किंतु कभी भेद ज्ञान प्रगटाने की चेष्टा नहीं करता ।
- दूध और पानी एक क्षेत्रावगाही रहते हुए भी जैसे भिन्न भिन्न हैं, दोनों का अस्तित्व भिन्न हैं वैसे ही संयोग से प्राप्त एकक्षेत्रावगाही रहते हुए भी शरीर आत्मा से भिन्न है । फिर साक्षात भिन्न दिखाई देने वाले स्त्री, पुत्र, धन मकान आदि जीव के कैसे हो सकते हैं ।
- मोहरुपी ' मृगतृष्णा ' परद्रव्य में सुख की कांक्षा में यह चेतनरुपी मृग यत्र - तत्र भ्रमण करता हुआ कभी शरीर में सुख की कल्पना करता है तो कभी उससे संबंधित चेतन, अचेतन पदार्थों में परंतु सुख की बूंद भी उसे नहीं मिलती ।
- हे आत्मन् ! पूर्णतः अपवित्र सप्त धातुओं से युक्त, नसा जाल से बद्ध, घृणास्पद आँतों से व्याप्त, कृमियों के समूह से समन्वित, वात, पित्त, कफ दोषों से युक्त बिल्ली के बच्चे की तरह काल के भय के कारण खेद उत्पन्न करने वाले इस अस्थिपञ्जर में तू क्यों आसक्त हो रहा है ? हे मित्र ! चैतन्य रुपी आम्र वृक्ष का अवलम्बन ले ।

- यह शरीर क्षुधा - तृषा की पीड़ा, महाशोक, वृद्धावस्था तथा तिरस्कार का करने वाला है, भय से सहित है, अत्यंत घृणित है, कफ, आंव, रक्त और मल से दूषित है ऐसे शरीर से हे विवेकी ! मोह का त्याग करो ।
- इस लोक में क्रूर कर्म ने तेरे रहने के लिए दुःसह कारागार के समान यह शरीर निर्मित किया है ।
- इस शरीर के संबंध से नाते को प्राप्त हुए बहुत भारी स्त्री - पुत्रादि अन्य पुरुष चले गये हैं । वे सब अपने - अपने कर्म के आधीन हैं अतः तेरे साथ कैसे जायेंगे ?
- यह शरीर सैंकड़ों उपकार करने पर भी साथ में नहीं जाता है इसके समान अधम, कृतघ्नी अन्य कोई दूसरा नहीं अतः शीघ्रता से साथ छोड़ देना चाहिए ।
- हे बुद्धिमान् ! तू इस शरीर की इच्छा छोड़ । वास्तव में यह सप्त मल धातुओं का - मल, मूत्र, मांस, मज्जा, रक्त, पीव, वीर्य पिंड है । ज्ञानी जन योग के द्वारा क्षणभर में इसे नष्ट कर देते हैं ।
- सिद्ध, बुद्ध, एकत्व - विभक्त, ज्ञायक पिंड स्वरुप आत्मा ही तेरा निज घर है, उस निज घर को पहचानो तथा पर घर का (शरीर) त्याग कर दो ।
- शरीर के निमित्त प्राणी भोग भोगता है, भोग से पाप होता है, पाप से दुःख होता है, दुःख से परिणाम संक्लेशित होते हैं, संक्लेश से दरिद्रता होती है तथा नाना दुःख भोगने पड़ते हैं अतः ऐसे शरीर को दूर से ही छोड़ दो ।
- शरीर से बड़ा शत्रु तथा निज आत्म गुण से बड़ा कोई मित्र नहीं है । अतः शक्ति भर प्रयत्न द्वारा शत्रु को नष्ट कर मित्र की प्राप्ति करना चाहिए ।
- देहातीत अवस्था में ही शाश्वत / सच्चा सुख है ।

" आस्रवानुप्रेक्षा "

- आस्रव अशुचि है, जड़ है, दुःख के कारण हैं। जैसे जल में सेवाल मलिन होने से जल को मैला दिखलाती है, उसी प्रकार ये आस्रव भी आप मलिन हैं व आत्मा को मलिन अनुभव कराते है।
- जिस प्रकार अपराध करने पर अपराधी को हथकड़ी या बेड़ी से बांधकर जेल में बंद कर दिया जाता है, उसी प्रकार ये आस्रव रुपी सांकल / बेड़ी से बांधकर, शरीर रुपी जेल में इस जीवराजा को बंद कर दिया जाता है।
- जिस जीव के प्रशस्त राग है, अनुकंपा सहित परिणाम हैं और चित्त कलुषता से रहित हैं उस जीव को पुण्य का आस्रव होता है।
- चारों संज्ञाए, तीन अशुभ लेश्याएँ, इंद्रियों की आधीनता, आर्त-रौद्र ध्यान, अशुभ कार्यों में लगा हुआ ज्ञान और मोह ये पाप रुप मोहनीय कर्म के आस्रव के कारण हैं।
- दुःख रुपी जलचरों से भरे हुए, बहुत दोष रुपी तरंगों से युक्त तथा जन्म - मरण रुप महासमुद्र में जो जीव का परिभ्रमण हो रहा है उसका मूल कारण एक मात्र कर्मों का आस्रव है।
- आस्रव का कार्य है कर्मों को निमंत्रण देना। जब तक योग है तब तक आत्म प्रदेशों में परिस्पन्दन होता है तथा आत्म प्रदेशों के परिस्पन्दन से ही कर्मास्रव होता है।
- दर्शन मोह / मिथ्यात्व के वशीभूत होकर यह संसारी जीव अनादिकाल से भटक रहे हैं, कर्मरुपी चोर, चारों ओर से इसकी दर्शन, ज्ञान, चारित्र रत्नत्रय रुपी सम्पत्ति को लूट रहे हैं,

पर बेहोशी में सोते हुए जीव को होश कहाँ।

- जो जीव कुटिल परिणाम रखते हैं, दूसरों को दुःखी करके स्वयं सुखी होना चाहते हैं वे अशुभ नाम कर्म का आस्रव करते हैं।
- मन, वचन व काय की प्रवृत्ति यदि शुभरुप है तो शुभास्रव / पुण्यास्रव होता है। और यदि मन, वचन, काय की प्रवृत्ति यदि अशुभ रुप है तो अशुभास्रव / पापास्रव होता है। अतः त्रय योगों को सम्हालने का प्रयत्न करना चाहिए।
- बुरा बोलने के लिए गूंगे बन जाओ, बुरा देखने के लिए अंधे बन जाओ और बुरा सुनने के लिए बहरे बन जाओ, ये ही उन्नति का पथ है। आस्रवों से बचने का उपाय है।
- जो योगों से सरल है, विसंवाद में भयभीत है, धर्मात्मा पुरुषों का सम्मान करता है, उत्साह पूर्वक धार्मिक कार्य करता है, संसार से भयभीत है, तीर्थ वंदना करता है वह शुभ / पुण्य कर्मों का उपार्जन करता है।
- तीर्थंकर जैसे महान पुण्य प्रकृति का बंध शुभास्रव का ही फल है।
- जो अपने द्वार को खोले, हाथ में फूलों की माला लिये खड़े रहते हैं उनके यहाँ मेहमान आते ही रहते हैं उसी प्रकार जो जीव संवर हेतु प्रयत्नशील नहीं होते। नित्य, निरंतर गृहस्थी में ही रचे - पचे रहते हैं उनके मेहमानों की तरह कर्मों का आगमन निरंतर होता ही रहता है।
- जिसकी नाव सछिद्र है उसमें निरंतर पानी भरता ही रहता है उसी प्रकार मिथ्यात्वादि छिद्रों से निरंतर कर्मास्त्रव जारी रहता है।

" संवरानुप्रेक्षा "

- चल, मलिन और अगाढ़ दोषों से रहित सम्यक्त्व रुपी दृढ़ कपाटों से मिथ्यात्व के आस्रव द्वार का निरोध अर्थात् संवर होता है ।
- भाव सहित धारण किये महाव्रतों से अविरति का तथा क्रोधादि कषाय से होने वाले आस्रव का निरोध अकषाय भाव से होता है ।
- जैसे चतुर द्वारपाल मैले तथा असभ्यजनों को घर में प्रवेश नहीं करने देता उसी प्रकार समीचीन बुद्धि, पाप बुद्धि को हृदय में फटकने नहीं देती । समीचीन बुद्धि संवर करने में तत्पर असंयम रुपी विष के जहर के उद्‌गार को संयम रुपी अमृत मयी जलों से दूर कर देते हैं ।
- जिस प्रकार युद्ध के संकट में अच्छी तरह तलवार आदि लेकर सजा हुआ वीर पुरुष वाणों से नहीं भिदता उसी प्रकार संसार की कारण रुप क्रियाओं से विरक्त संवर वाला संयमी मुनि असंयम रुप बाणों से नहीं भिदता ।
- वह नाविक बुद्धिमान होता है जो अपनी नाव के छिद्र अर्थात् पानी आने के स्रोत को पहले खोजता है तथा उसे उद्यम पूर्वक बंद कर देता है । उसी प्रकार ज्ञानी सम्यग्दृष्टि जीव पहले आस्रव के द्वारों कारणों को जानता है फिर अपने सम्यक् पुरुषार्थ से उनका निरोध कर देता है । अर्थात् संवर को प्राप्त कर लेता है ।
- उन्मार्ग में गमन करने वाला घोड़ा जिस प्रकार लगाम के द्वारा वश में किया जाता है, वैसे ही इंद्रिय रुपी घोड़े को पंचेन्द्रिय विषयों में अप्रवृत्ति रुप लगाम के द्वारा रोकना चाहिए ।

- कषायों का शमन और इंद्रियों का दमन इनसे जो कर्मों का निरोध होता है वही संवर आदरणीय है, आचरणीय है ।
- सम्यक् प्रकार से कर्मों का निराकरण जिससे होता है वह संवर है । जो समिति, गुप्ति, अनुप्रेक्षा परीषह जय व चारित्र से होता है ।
- संवर का इच्छुक संयमी, ज्ञानी मन रुपी मर्कट को वश करें क्योंकि जैसे विद्या, मंत्र, औषधि से पुरुष आसीविष सर्प को निग्रह करने में समर्थ नहीं होता वैसे ही चपल मन मानव इंद्रिय रुपी सर्पों का निग्रह नहीं कर सकता ।
- मावन जीवन रुपी इस नौका में ५७ छिद्र हो रहे हैं । एक - एक छिद्र को रोकने के लिए एक - एक ऐसे ५७ परिणाम - ५ महाव्रत, ५ समिति, ३ गुप्ति, १० धर्म, २२ परीषहजय और १२ भावनाएँ ये ५७ संवर रुपी डाँट है । इनको जीवन रुपी नौका पर लगाओ, अशुभ व शुभ भावना से रहित शुद्ध का चिंतन करो, बस अंतर्मुहूर्त में आपकी जीवन नौका भव समुद्र से पार हो जायेगी ।
- जैसे नाव में जल के आने के द्वार को काठ आदि से रोका जाता है वैसे अप्रमाद रुप फलक से प्रमाद रुप जो पाप - प्रयोग है उन्हें रोकना चाहिए ।
- जैसे खाई, कोट आदि से रक्षित नगर शत्रु के द्वारा भंग नहीं किया जा सकता वैसे ही मन - वचन - काय की गुप्त रुप खाई, कोट से रक्षित संयम नगर को कर्मरुप शत्रु की सेना भंग करने में सक्षम नहीं हो सकती ।
- प्रमाद रहित पुरुष समिति रुपी दृढ़ नाव में बैठकर छह निकाय की हिंसा से उत्पन्न पाप रुप जलचर का स्पर्श नहीं करते हुए संसार समुद्र से पार हो जाते हैं ।

" निर्जरानुप्रेक्षा "

- जिससे संसार के बीज रुप कर्म गल जाते हैं। झड़ जाते हैं उसे निर्जरा कहते हैं। जैसे सदोष भी सोना अग्नि में तपाने से शुद्ध हो जाता है, वैसे ही कर्म रुपी दोषों से सहित यह जीव तपरुपी अग्नि में तपने से शुद्ध, निर्दोष, कर्मरज से रहित हो जाता है।
- बार - बार आत्म तत्व की ओर लक्ष्य दो, उसे पहचानने का पुरुषार्थ करो ये परिणाम ही निर्जरा का कारण है।
- ज्ञान रुपी दीपक लो, उसमें बारह तप रुपी तेल भरो तथा उस दीप के प्रकाश से आत्मा के भीतर अनादिकाल से बैठे राग - द्वेष - मोह आदि बड़े - बड़े चोरों की खोज कर एक - एक को बाहर निकालो।
- तपः शक्ति के प्रभाव से यह जीव कर्म स्थिति का उत्कर्षण, अपकर्षण, उपशम, उदीरणा, संक्रमण आदि करके निर्जरा का द्वार खोलता है।
- त्रिगुप्ति की साधना के बिना पूर्ण कर्म निर्जरा कभी भी नहीं हो सकती।
- कर्मों की स्थिति पूरी होने पर कर्मों का क्षरण होना सविपाक / अकाम निर्जरा है।
- आम पनस आदि फलों को माली पाक में रखकर क्रिया विशेष से पकाता है, वैसे ही मुमुक्षु भव्य माली उन कर्मों को जो उदयावलि से बाहर स्थित हैं, तप आदि की विशेष सामर्थ्य से बलपूर्वक असमय में (उदीरणा द्वारा) उदय में लाकर निर्जीण करता है उसे अविपाक निर्जरा कहते हैं।

- जिस आत्मा में सच्ची निर्जरा की लहर जागी है वह पूजा आदि के समय को कभी टालता नहीं, अपने आवश्यकों की कभी हानि नहीं करता।
- जिन भक्ति, दर्शन, पूजन, स्तवन आदि शुभभाव में तात्कालिक बंध की अपेक्षा निर्जरा अधिक होती है।
- षट् आवश्यक क्रिया करते हुए श्रावक जितना - जितना निराकुल होता है, रागांश से छूटता है उतने - उतने अंश में निर्जरा होती है।
- उपवास / अनशन करते हुए भी जिस योगी का चित्त विशुद्ध नहीं है निरंतर आकुलता बनी हुई है उसका वह तप कर्म निर्जरा नहीं अपितु कर्म लेप का कारण बनता है।
- जितना भी बाह्यतप है वह अंतरंग तप की वृद्धि के लिए किया है। परंतु यदि बाह्यतप करते हुए भी अंतरंग तप में वृद्धि न हो अपितु ह्रास हो तो वह बाह्यतप कर्म निर्जरा नहीं करा सकता।
- निर्जरा का महत्वपूर्ण अंग ध्यान है, एक ही पदार्थ में चित्त के एकाग्र करने रुप ध्यान को जो करता है वह क्षणभर में संपूर्ण कर्मों की निर्जरा कर निर्वाण प्राप्त कर लेता है।
- परिणामों की विशुद्धि के निमित्त से सम्यग्दृष्टि, श्रावक, विरत, अनंतानुबंधी वियोजक, दर्शन मोहक्षपक, दर्शन मोह उपशमक, उपशान्त मोह, क्षीणमोह और जिन ये क्रम से असंख्यात गुण श्रेणी निर्जरा के स्थान है।
- निर्विकार चैतन्य चमत्कार के अनुभव से उत्पन्न जो सहज आनंद, स्वभाव, सुखामृत के आस्वाद से उत्पन्न भावों से कर्मरुपी पुद्गल फल देकर क्षय को प्राप्त होते हैं वह भाव निर्जरा है तथा तप से कर्मरुप पुद्गलों का क्षय हो जाना द्रव्य निर्जरा है।

- बाह्यव अंतरंग तप को जो योगी अपनी शक्ति, युक्ति व विवेक के साथ तपता है वह कम समय में कई गुनी कर्म निर्जरा का पात्र बनता है ।
- कर्म निर्जरा का मापक परिणाम है परिणामों में जैसे - जैसे निर्मलता बढ़ती जाती है वैसे - वैसे निर्जरा भी बढ़ती जाती है ।
- निर्जरा जब अपनी चरम सीमा को प्राप्त हो जाती है उसी का नाम सफल कर्म क्षय है ।
- भाव शून्य क्रिया से होने वाली निर्जरा सम्यक नहीं है वह तो सछिद्र नाव सें उलीचे गये जल की तरह है जिस प्रकार सछिद्र नाव को कितना भी उलीचो परंतु खाली नहीं हो पाती उसी प्रकार भाव शून्य क्रियाओं से जितनी निर्जरा होती है उसपे अधिक आश्रव हो जाता है ।

" लोकानुप्रेक्षा "

- यह लोक चौदह राजु उत्तंग, पुरुषाकार, अकृत्रिम है, अनादि अनंत है, स्वभाव से निष्पन्न है, जीवादि द्रव्यों से भरा हुआ है, समस्त आकाश के बहुमध्य भाग में स्थित, असंख्यात प्रदेशी व नित्य है ।
- ऊर्ध्व, मध्य व अधो के भेद से यह लोक तीन भेद वाला है ऊर्ध्व लोक में देव, मध्य लोक में असंख्यात द्वीप समुद्र हैं जिसमें मनुष्य तिर्यंच व देव निवास करते हैं अधोलोक में नारकी रहते हैं ।
- किन्हीं लोगों का कथन है कि बह्मा ने इसे बनाया है, विष्णु इसे धारण किये हुए है तथा शंभु इसका संहार करते हैं तो कोई कहता है कि यह लोक कछुये की पीठ पर या शेषनाग के फण पर ठहरा हुआ है । यह उनका भ्रम है ।
- लोक तो अविनाशी, स्वयं सिद्ध, अनादि निधन है इसका कोई स्वामी या कर्ता - धर्ता नहीं है । तथापि यह जीवादि पदार्थों से भरा हुआ है ।
- इस लोक में यह जीव पाप कर्म के फल से अधोलोक में जाता है, पुण्यकर्म के फल से ऊर्ध्व लोक में जाता है, पाप - पुण्य की समानता होने पर मध्यलोक में जन्म लेता है और दोनों का अभाव होने पर सिद्धलोक का वासी बनता है ।
- इस जीव ने अज्ञानतावश तीनों लोकों में भ्रमण किया है, लोक का एक भी प्रदेश ऐसा नहीं जहाँ यह जन्म - मरण को प्राप्त न हुआ हो ।
- साम्य भाव को प्राप्त कर ज्ञानी जीव दुःख - सुख में, शत्रु - मित्र में, जीवन - मरण में, वन - नगर में, लाभ - अलाभ में

हर्ष - विषाद नहीं करता हुआ तथा लोक के स्वरुप का चिंतन करता हुआ लोकाग्रवासी बनता है ।

- यह जीव कामवासना, भोगासक्ति व मायाचार जैसे निंद्यनीय पाप के फल से घोर अधोलोक के नरक में जाकर स्वकृत पापों के कारण असह्य दुःख भोगता है ।
- बाह्यलोक में निवास करता हुआ भी जो आत्मलोक को पाने का उद्यम करता है वह एक दिन अवश्य उस आत्म लोक में जा विराजता है ।
- दया, दान, सदाविवेक, सदाचरण तथा सम्यक् पुरुषार्थ के बल से यह जीव ऊर्ध्वलोक को प्राप्त करता है वहाँ नाना इंद्रिय जन्य सुखों को भोगता है तथा वहाँ से चय कर मनुष्यादि भवों को धारण कर अभेद रत्नत्रय के बल से लोकाग्रानुगामी बनता है ।
- कर्मों के समूल क्षय हो जाने पर यह जीव गैस के गुब्बारे की तरह ईषु गति से गमन करता (चलता) हुआ १ समय में ही सिद्धशिला अर्थात् लोक के अग्रभाग तक पहुँच जाता है ।
- नीचे मुख किये हुए आधे मृदंग के ऊपर पूरा मृदंग रखने पर जो आकार होता है वैसा आकार लोक का है। परंतु मृदंग गोल है, लोक चौकोर है । लोक नीचे वेत्रासन, मध्य में झालर व ऊपर मृदंग के समान आकार वाला है ।
- लोकानुप्रेक्षा के चिंतन से परिणामों में एकाग्रता आती है, तथा यह संस्थान विचय धर्मध्यान का प्रबल हेतु है । जिससे असंख्यात गुण श्रेणी रुप से कर्मों की निर्जरा होती है ।
- जो लोकानुप्रेक्षा का आश्रय लेते हैं वे प्राणी शीघ्र ही लोकान्त को पा लेते हैं ।

" बोधि - दुर्लभ अनुप्रेक्षा "

- यह बोधि अर्थात् सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र रुप रत्नत्रय हैं, इस संसार रुपी समुद्र में प्राप्त होना सुगम नहीं है अपितु अत्यंत दुर्लभ है, इसको पाकर भी जो इसे खो बैठते हैं, उनको हाथ में रखे हुए रत्न को समुद्र में डाल देने पर जैसे फिर मिलना कठिन है उसी प्रकार सम्यक् रत्नत्रय का पाना दुर्लभ है । अतः उसके संरक्षण, संवर्धन में सक्रिय होना चाहिए ।
- रत्नत्रय निज शुद्ध आत्मा को छोड़कर अन्य अचेतन द्रव्यों में नहीं रहता ।
- राग, द्वेष, मोह की उपाधि से रहित चैतन्य चमत्कार की भावना से उत्पन्न आत्मा का परद्रव्य से भिन्न श्रद्धान निश्चय सम्यग्दर्शन है ।
- (सच्चे देव) वीतरागी सर्वज्ञ व हितोपदेशी सच्चे देव, संशय - विभ्रम विमोह रहित निर्दोष वीतराग प्रभु की वाणी / जिनवाणी व निर्ग्रंथ गुरु ये तीन रत्न हैं। इन तीन की आराधना से ही बोधि / रत्नत्रय की प्राप्ति हो सकती है, अन्य से नहीं ।
- निश्चय रत्नत्रय की प्राप्ति , व्यवहार रत्नत्रय के बिना संभव नहीं ।
- सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र ये तीनों हित रुप हैं, इनसे जो सहित हैं वे ही सदा सत्पुरुष हैं, ऐसा जिनेन्द्र भगवान कहते हैं ।
- जो भव्यजीवों का अद्वितीय आभूषण है, मुक्ति स्त्री को संतुष्ट करने वाला है तथा अज्ञानकारक की संतति को नष्ट करने के

लिए सूर्य है, उस श्रेष्ठ रत्नत्रय की उपासना करो ।

- सम्यग्दर्शन से दुर्गति का नाश होता है, निर्दोष ज्ञान से कीर्ति की प्राप्ति होती है, चारित्र से लोक में पूज्यता मिलती है परंतु मोक्ष इन तीनों की सफलता से ही प्राप्त होता है ।
- श्रीमान् सर्वज्ञ देव के द्वारा निरुपित रत्नत्रय रुप को न पाकर प्राणी संसार रुपी अटवी में चिरकाल से नष्ट हो रहे हैं, खो रहे हैं ।
- जो संसार रुपी सर्प के लिए नागदमनी औषध है, दुःख रुपी महान दावानल को शांत करने के लिए जलवृष्टि है तथा मुक्ति सुख रुपी सुधा की सरोवरी है, वह सम्यग्दर्शनादित्रयी जयन्त प्रवर्तती है ।
- लोक में निगोद से निकलकर स्थावर पर्याय को पाना दुर्लभ है, उससे दुर्लभ त्रस पर्याय को पाना है उसमें भी मनुष्य पर्याय को पाना दुर्लभ है । उत्तम देश, सुसंगति व श्रावक कुल पाना भी उत्तमोत्तम दुर्लभ है यह भी मिल जाये तो सम्यक्त्व, संयम व पाँचवा गुणस्थान भी दुर्लभ है और इससे दुर्लभ मुनिव्रतों का पालन व शुद्ध भाव करना है तथा इन सभी दुर्लभ अवस्थाओं में सबसे दुर्लभ या दुर्लभ से भी दुर्लभ बोधि ज्ञान है क्योंकि जिसने बोधि को पा लिया वह एक दिन केवल ज्ञान को पा लेता है ।
- सम्यक्त्व से उत्तम गति कही गयी है, ज्ञान से कीर्ति बताई गई है, चारित्र से मनुष्य पूजा को प्राप्त होता है और तीनों से मोक्ष प्राप्त होता है ।
- रत्नत्रय धर्म से बढ़कर इस जीव का हितकारी कोई अन्य नहीं है ।

" धर्मानुप्रेक्षा "

- जिस प्रकार पंख के बिना पक्षियों की, नमक के बिना भोजन की, मधुर कण्ठ के बिना गीत की तथा तिलक के बिना पंडित की शोभा नहीं होती उसी प्रकार धर्म के बिना मनुष्य की शोभा नहीं होती ।
- प्रवास में विद्या मित्र है, घर में पत्नि मित्र है, रोग होने पर औषधि मित्र है परंतु धर्म, जन्म से मृत्यु पर्यंत मित्र है ।
- पाप से दुःख और धर्म से सुख होता है यह सर्वजन सुप्रसिद्ध है इसलिए सुख के इच्छुक मनुष्य को पाप छोड़कर सदा धर्म का आचरण करना चाहिए ।
- धर्म सहित मनुष्य का एक मुहूर्त का जीवन अच्छा है और धर्म रहित मनुष्य का कोटी वर्ष का जीवन भी व्यर्थ है ।
- बिना बीज के अंकुर नहीं होता, बिना मेघ के वृष्टि नहीं होती, बिना छत्र के छाया नहीं होती और बिना धर्म के संपदाएँ नहीं होती ।
- जिस प्रकार छिन्नमूल वृक्ष और छिन्नमस्तक योद्धा कितने समय तक ठहर सकता है उसी प्रकार धर्म हीन मनुष्य कितने काल तक ठहरता है ।
- धर्म रहित मनुष्य जीवन रहते हुए भी मृत है और धर्म सहित मनुष्य मृत होकर भी इह लोक या परलोक में जीवित है ।
- शरीर अनित्य है, वैभव स्थायी नहीं है और मृत्यु निकट है अतः धर्म का संग्रह करना चाहिए ।
- उल्लू सूर्य को नहीं जानते हैं तो क्या इसका प्रकाश कहीं चला जाता है ? कौवे पूर्ण चंद्रमा को नहीं जानते हैं तो क्या इसकी

कांति कहीं चली जाती है ? कुएँ में रहने वाले मेढ़क क्षीर समुद्र की निंदा करते हों तो इसकी कौन सी निंदा हो जाती है इसी प्रकार यदि अन्य अज्ञानी पुरुष जैनधर्म को नहीं जानते तो उसकी कौन सी हीनता हो जाती है ? कुछ नहीं ।

- संसार में रागद्वेष रुपी दो पाटों के बीच जीव निरन्तर दुःखी है किंतु जो धर्म रुपी कील का सहारा लेते हैं वे शाश्वत अविनाशी सुख को प्राप्त करते हैं ।
- मानव जीवन में जीने की कला धर्म से ही आती है । जो धर्म पूर्वक जिंदगी में जिया नहीं वह शांति से मर भी नहीं सकता, अतः धर्म को धारण करो ।
- जिस प्रकार रत्नों में श्रेष्ठ हीरा है, वृक्षों में श्रेष्ठ गोशीर्ष चंदन है उसी प्रकार धर्मों में श्रेष्ठ धर्म अहिंसा मयी जिनधर्म है ।
- इच्छित वस्तु देने के लिए धर्म ही कामधेनु है, धर्म ही चिंतामणि है, धर्म ही स्थिर रहने वाला कल्पवृक्ष है तथा धर्म ही अविनाशी निधि है ।
- प्राणियों के ऊपर दया भाव रखना श्रेष्ठ धर्म है ।
- गृहस्थ व मुनि धर्म के भेद से धर्म दो प्रकार का हैं, रत्नत्रय की अपेक्षा तीन प्रकार का हैं तथा उत्पम क्षमादि के भेद से दश भेद वाला कहा गया हैं । यह सब व्यवहार धर्म है ।
- निश्चय से मोह के निमित्त से उत्पन्न होने वाले मानसिक विकल्प समूह से तथा वचन एवं शरीर के संसर्ग से भी रहित जो शुद्ध आनंद रुप आत्मा की परिणति होती है उसे ही ' धर्म' इस नाम से कहा जाता है ।
- दया, धर्म रुपी वृक्ष की जड़ है ।
- विष की वेदना को मंत्र के द्वारा, खेतों को अतिवर्षा होने से, कमल वन को पाल के पड़ने से नष्ट किया जाता है, उसी तरह

क्षमा और शांति रुपी जल से क्रोधाग्नि को क्षय करो ।

- उत्कृष्ट ज्ञानी और उत्कृष्ट तपस्वी होते हुए भी जो मद नहीं करता वह मार्दव रुपी रत्न का धारी होता है ।
- जो मुनि कुटिल भाव नहीं करता, कुटिल कार्य नहीं करता और कुटिल बात नहीं बोलता तथा अपने दोष नहीं छिपाता उसके आर्जव धर्म होता है ।
- धर्म के बिना सम्पत्ति की कोई कीमत नहीं होती है ।
- धर्म के बिना जीना तो बेमौत मरना है ।
- धर्म से सहित दरिद्र रहना श्रेयस्कर है ।
- धर्म के बिना चक्रवर्ती की सम्पदा व्यर्थ है ।
- धर्म जिसके जीवन में नहीं उसका जीवन कभी जीवंत नहीं होता है ।
- धर्म के बिना जीवन कभी जीवंत नही होता ।
- धर्म कोई खिलौना नहीं जिसे जब चाहे छोड़ दो, जब चाहे उठा लो ।
- धर्म को छोड़कर कल्याण नहीं हो सकता है ।
- धर्म ही मुक्ति का द्वार है ।
- धर्म को छोड़कर मुक्ति की प्राप्ति नहीं हो सकती ।
- धर्म के बिना जीवन पशु की तरह होता है ।
- धर्म के बिना जीवन शून्य की तरह होता है ।
- धर्म के बिना जीवन मृतक के समान होता है ।
- धर्म पुण्य संसार समुद्र से पार करा देता है ।
- धर्म ही हमें अपने लक्ष्य तक पहुँचाता है ।
- धर्म का सहारा लेने वाला प्राणी कभी दुःखी नहीं रहता है ।
- धर्म से सुख की प्राप्ति होती है ।

- धर्म से धन की प्राप्ति होती है।
- धर्म ही हमें जीने की कला सिखाता है।
- धर्म हमें अज्ञानता से ज्ञान की ओर ले जाता है।
- धर्म से हम अपने सत् कर्तव्यों का पालन करते हैं।
- धर्म, मिथ्यात्व से छुटकारा दिलाता है।
- धर्म के रहने पर दौलत, व्यक्ति के पास ठहरती है।
- धर्म से आत्मीय शांति मिलती है।
- धर्म का लक्षण है कि सेवा में तत्पर होना।
- धर्म अंदर आत्मा से उत्पन्न होता है बाहर की क्रियाओं से नहीं ।
- पहले अपने हृदय को उपजाऊ बनाओ, फिर धर्म का बीज बोओ।
- जब धर्म का बीज अंकुरित होगा तभी धर्म का वास्तविक आनंद आयेगा।
- धर्म संस्कार के पूर्व यदि हृदय को नहीं जोता तो सारा श्रम व्यर्थ है।
- धर्म साधना, त्याग की सीढ़ी है।
- धर्म भरने के लिये खाली होना पड़ेगा।
- जब तक धर्म की अनुभूति नहीं होगी तब तक उसका हृदय श्रद्धा, विश्वास से नहीं भीगता है और धर्म का आनंद भी नहीं आता है।
- धर्म जब प्रत्येक हृदय में अंकुरित होता है तो विश्वशांति होती है।
- धर्म का सहारा ही वास्तविक सहारा है।
- धर्म जीवन में उन्नति का मार्ग है।

- धर्म, अन्याय का नहीं, न्याय का साथी होता है।
- धर्म की पकड़ ही सच्ची पकड़ है, जिसने धर्म पकड़ लिया, समझो उसने आत्मोपलब्धि को पकड़ लिया।
- धर्म तुम्हें पकड़ेगा नहीं, उसे तुम्हें पकड़ना होगा।
- जिसके जीवन में धर्म का सहारा नहीं, वह कभी ऊर्ध्वता प्राप्त नहीं कर सकता।
- धर्म से रहित आत्मा का नियम से अधोपतन होता है।
- जो आत्मा धर्म के सहारे रहेगी, वही सिद्धालय तक पहुँचेगी।
- जैसे लता बिना आश्रय के ऊपर नहीं उठ सकती है, वैसे ही धर्म के आश्रय के बिना व्यक्ति ऊपर नहीं उठ सकता।
- यदि आपके पास धर्म है तो पुण्य है।
- धर्म का परिचय शब्दों से नहीं, अंत: करण से होता है।
- धर्म का संबंध शरीर या वचनों से नहीं आत्मा से होता है।
- धर्म से बढ़कर कोई सच्चा मित्र नहीं है।
- पाप कर्म के व विपत्ति के उदय आने पर अपने भी पराये हो जाते है, क्या सास - श्वसुर, क्या माता - पिता, क्या पति - पुत्र कोई साथ नहीं देता एसे समय में इस जीव का कोई सहायक है तो वह एक मात्र धर्म ही सहायक होता है।

जिनेन्द्र दर्शन

- प्यास बुझाने एवं प्यास को जगाने का माध्यम है - जिनेन्द्र दर्शन।
- संसार की तपन से संतृप्त प्राणियों के लिये शीतल जल है - जिनेन्द्र दर्शन।
- स्वर्ग का सोपान है - जिनेन्द्र दर्शन।
- मोक्ष का साधन एवं पापों का निवारण करने वाला है - जिनेन्द्र दर्शन।
- संसार के अंधकार को नष्ट करने वाला एवं समस्त अर्थों को प्रकाशित करने वाला यदि कोई सूर्य है तो वह जिनसूर्य है।
- श्रद्धा के साथ सिर झुकाना ही वास्तविक जिनेन्द्र दर्शन हैं।
- जिनेन्द्र देव सम्यक् प्रकाश करते हैं इसलिये उन्हें जिन सूर्य कहा है।
- जिस प्रकार वज्र के द्वारा तोड़ने से पर्वत के सौ - सौ खण्ड हो जाते हैं उसी प्रकार जिनेन्द्र भगवान की भावपूर्वक दर्शन करने से जन्म जन्मान्तर के पाप नष्ट हो जाते हैं।
- भाव सहित जिन दर्शन करने वाला संपूर्ण पापों का क्षय कर स्वयं जिन रुप हो जाता है।
- जिनेन्द्र दर्शन का लाभ भव - भव के पुण्यों का प्रताप समझना चाहिए।

णमोकार मंत्र

- णमोकार महामंत्र में सम्पूर्ण द्वादशांग का सार भरा हुआ है।
- णमोकार महामंत्र में विश्व की समस्त विद्याएँ समस्त पुस्तकें पढ़ी जा सकती हैं।
- णमोकार महामंत्र समस्त शक्तियों का खजाना है।
- णमोकार महामंत्र आत्म - शांति का अमोघ साधन है।
- णमोकार महामंत्र समस्त विपत्तियों को हरने वाला है।
- णमोकार महामंत्र सम्पूर्ण समस्याओं का समाधान है।
- णमोकार महामंत्र असंतोष को संतोष में परिवर्तित करता है।
- णमोकार महामंत्र समस्त विघ्न - बाधाओं को हरण करने वाला है।
- णमोकार महामंत्र संम्पूर्ण कामनाओं को पूर्ण करने वाला है।
- णमोकार महामंत्र विश्वशांति का महामंत्र है।
- णमोकार महामंत्र एक ऐसा मंत्र है जिसके श्रवण मात्र से हमारा हित हो सकता है।
- णमोकार महामंत्र आस्था के बिना प्रभावकारी नहीं हो सकता है।
- णमोकार महामंत्र आत्म कल्याणी है।
- णमोकार महामंत्र पावन - पवित्र बनाने वाला मंत्र है।
- णमोकार महामंत्र मुक्ति प्रदाता मंत्र है।
- णमोकार महामंत्र सम्पूर्ण शक्तियों का पुंज है।

- णमोकार महामंत्र में एक महाशक्ति है जिसके समक्ष दैविक शक्ति भी परास्त होकर पलायन कर जाती है।
- णमोकार महामंत्र का एक अचिन्त्य प्रभाव है।
- णमोकार महामंत्र के प्रभाव से विष भी निर्विष हो जाता है।
- णमोकार महामंत्र के प्रभाव से सारे पाप नष्ट हो जाते है।
- णमोकार महामंत्र के प्रभाव से विष निर्विष हो जाता है, अग्नि जल में बदल जाती है, शूली भी सिंहासन में परिवर्तित हो जाती है।
- यह विश्व शांति मंत्र है जो भी मन से ध्याता है उसका बेड़ा पार हो जाता है।
- पंचपरमेष्ठियों के स्मरण से आत्म विशुद्धि जगती है। और उस विशुद्धि के बल से कर्म निर्जीण होते है।
- णमोकार मंत्र में सभी मंत्र समाहित होते है इसीलिए यह महामंत्र है।
- णमोकार मंत्र को किसी ने बनाया नहीं है इसलिए यह अनादिनिधन मंत्र है।
- सभी मंत्रों का मूल रुप मंत्र होने से यह मूलमंत्र भी कहलाता है।

कर्म

- जैसे कर्म किये हैं वैसा फल आपको ही भोगना पड़ेगा, किसी और को नहीं।
- कर्मो के अनुसार ही सुख - दुःख का अनुभव करना पड़ता है।
- व्यक्ति हँसते - हँसते कर्म को बाँधता है और रोते - रोते भोगता है।
- कर्मों का फल दूसरों को नहीं स्वयं को भोगना पड़ता है।
- कर्म किसी को नहीं छोड़ता है।
- हम किसी का भला - बुरा कर सकें या न कर सकें लेकिन हमारी अशुभ भावना मात्र से अशुभ कर्म का आस्रव शुरु हो जाता है।
- जब तक संक्लेशित परिणाम रहेंगे तब तक प्रति क्षण पाप कर्मों का आस्रव बंध चलता रहेगा।
- हम न किसी का अच्छा कर सकते हैं और न किसी का बुरा कर सकते हैं । बल्कि जो जैसे बीज बोता है वह वैसे फल प्राप्त करता है।
- कर्म, स्थिति तथा अनुभाग को बढ़ाने वाला है। जिस कर्म की स्थिति जितनी अधिक बंधेगी वह कर्म उतने अधिक समय तक अपना फल देगा तथा जिस कर्म का जितना अधिक अनुभाग होगा वह कर्म उतनी अधिक तीव्रता से फल देगा।
- अपने कर्मों का फल स्वयं भोगना पड़ता है कोई किसी के कर्मों का फल नहीं बाँटता है।

पुण्य - पाप

- आत्मा को पावन एवं पवित्र बनाने वाला पुण्य है ।
- आत्मा का पतन करने वाला पाप है ।
- लक्ष्मी पुण्य के उदय से प्राप्त होती है और पाप के उदय से समाप्त हो जाती है ।
- पुण्य का बीज सुरक्षित रखना ही सम्यक् विवेक है ।
- पुण्योदय में, पुण्य के कार्य करते रहना ही जीवन की सार्थकता है ।
- पुण्योदय में धर्म को भूल गये, तो पाप आकर जकड़ लेगा ।
- लक्ष्मी पुण्यात्मा के चरणों में निवास करती है पापात्मा के नहीं ।
- पुण्य जब फलता है, तो छप्पर फाड़ कर देता है और लेता है तो चमड़ी उधेड़ कर लेता है ।
- पुण्योदय से जब लक्ष्मी आती है तो व्यक्ति का सीना फूल जाता है और पापोदय से लक्ष्मी जब जाती है तो उसकी कमर तोड़ कर जाती है ।
- जब तक सत्ता में पुण्य होता है, तभी तक धन - वैभव तुम्हारे पास होता है ।
- पुण्य समाप्त होने पर धन मिट्टी हो जाता है ।
- जब पाप कर्म का उदय होता है तो हाथ में आया स्वर्ण भी मिट्टी हो जाता है ।
- बासी कमाई तब तक ही खा पाओगे जब तक पूर्व कृत पुण्योदय है ।
- जीवन को पाप में नहीं जाप में लगाओ ।

- व्यक्ति का जीवन हरा - भरा और शांति मय होता है कब तक, जब तक कि पूर्व पुण्योंदय है ।
- जब तक व्यक्ति पाप से परिचित नहीं होगा तब तक वह पाप से नहीं छूट सकता ।
- पाप कर्म के उदय से व्यक्ति दुःखी होता है ।
- पाप कर्म के उदय से व्यक्ति बीमार होता है ।
- पाप के संस्कार बहुत जल्दी आ जाते हैं ।
- पाप व पुण्य ये दोनों एक सिक्के के दो पहलु की तरह है ।
- जो पाप के उदय में विलखता नहीं तथा पुण्य के उदय में हर्षित नहीं होता अपितु समभाव रखता है वही सच्चा ज्ञानी है ।
- ज्ञानी विचार में उतरते है किये पुण्य व पाप तो पुद्गल की पर्यायें है तथा पर्यायें सदैव नष्टी होती व उपजती है । अतः मैं राग द्वेष करके क्यों व्यर्थ मैं आस्रव बंध करुं ?
- पुण्य के उदय में जो पुण्य का उपार्जन कर लेता है वह बुद्धिमान है तथा जो पुण्योदय से प्राप्त संपदा को पाप कार्यों में लगाता है वह पुण्य के उदय में भी पाप की ही कमाई करता है तथा भविष्य में बहुत दुःख पाता है ।

एकता

- एकता हमारे जीवन को उठा देती है ।
- एकता से हमें हर कार्य करने में सफलता मिलती है ।
- एकता हमारे जीवन में सुख्र और शांति प्रदान करती है ।
- एकता आनंद का स्रोत है ।
- एकता तभी रह सकती है जबकि एक - दूसरे के विचार मिलते हो ।
- एकता हमारे जीवन को आदर्श बनाती है ।
- एकता ही सबसे बड़ी प्रभावना है ।
- एकता हमें ऊँचाइयों तक पहुँचा देती है ।
- एकता से सारा समाज और संघ हरा -भरा रहता है ।
- एकता ही सफलता की कुंजी है ।
- एकता में इतनी शक्ति है कि उसका कोई कुछ बिगाड़ नहीं सकता है ।
- एकता के साथ रहने वाला व्यक्ति हमेशा खुश रहता है ।
- एकता की खुशी और आनंद एक अनूठा ही होता है ।
- एकता के साथ रहने से अन्य लोगों पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ता है ।
- एकता के सूत्र में बंधकर रहोगे तो हर जगह उन्नति प्राप्त करोगे ।
- एकता के साथ रहने वाले लोग रोते नहीं, हँसते हैं ।
- एकता से अशांति नहीं, शांति प्राप्त होती है ।
- एकता में हर कार्य करने से हल्का लगता है ।

अनुशासन

- अनुशासित जीवन ही जाज्ज्वल्यमान दीपक है ।
- अनुशासन में रहना प्रकाश में रहना है ।
- अनुशासन वह ज्योति पुन्ज है जिसके माध्यम से जीवन ज्योतिर्मय हो जाता है ।
- अनुशासन जीवन को आलोकित करने वाला मंत्र है ।
- जहाँ अनुशासन हैं, वहाँ उज्ज्वल आलोक है ।
- जहाँ अनुशासन हीनता है, वहाँ सदैव अंधकार है ।
- अनुशासनहीन व्यक्ति कभी भी आत्मिक सुख - शांति नहीं पा सकता है ।
- अनुशासन ही मानवता का आयाम है ।
- अनुशासनशीलता से ही समाज, देश हरा - भरा रहेगा ।
- अनुशासन आत्मविकास की प्रथम सीढ़ी है ।
- अनुशासन जीवन को जीवंत बनाने वाला महत्वपूर्ण सूत्र है ।
- समाज हो या राष्ट्र, जहाँ अनुशासन है, वहीं उत्थान एवं उपलब्धियाँ हैं ।
- अनुशासन का जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में विशिष्ट योगदान है ।
- अनुशासन का अर्थ है नियंत्रण अर्थात् शासन में रहना ।
- अनुशासन हीन व्यक्ति कभी स्व - पर का हित नहीं कर सकता ।
- समाज, संघ, राष्ट्र को एकता के सूत्र में बांधने के लिए अनुशासन परमावश्यक है ।
- अनुशासन एक व्यवस्था का नाम है ।

- जैसे बिना अंकुश के हाथी सारे बगीचे, वन को नष्ट -भ्रष्ट कर डालता है, उसी प्रकार अनुशासन विहीन व्यक्ति स्व -पर अर्थात् परिवार, समाज एवं राष्ट्र को नष्ट कर डालता है ।
- अनुशासन हीन मनुष्य बुझे दीपक की तरह है ।
- अनुशासन में रहना सुन्दर साँचे में ढलना है ।
- अनुशासन के साँचे में ढलना मानो नवीन सुन्दर आकृति प्राप्त करना है ।
- अनुशासन ही व्यक्ति को महान बनाता है ।
- जो शिष्य अपने गुरु के अनुशासन में रहते हैं वे शिष्य समाज के गौरव बन जाते हैं ।
- शिष्य की उन्नति अनुशासन में छिपी होती है ।
- जो शिष्य, गुरु के अनुशासन में चलता है वही जीवन को आलोकित कर विश्व का आलोक स्तम्भ बनता है ।
- अनुशासन में रहना प्रारंभ में कठिन लगता है परन्तु अंत में उसका फल बहुत मीठा होता है ।
- अनुशासन हर जगह प्रशंसनीय होता है ।
- अनुशासन हीनता हर जगह उपहास का पात्र होती है ।
- अनुशासन हीनता ही उपलब्धियों को समाप्त कर देती है ।
- आत्मानुशासन, आत्मा को परमात्मा बनाता है ।
- आत्मानुशासन के अभाव में साध्य यानि मुक्ति की प्राप्ति संभव नहीं है ।
- मंजिल को पाने के इच्छुक साधकों को अनुशासन के अनुसार चलना परमावश्यक है ।

अपराध बोध

- अपराध को मान लेना ही सबसे बड़ा प्रायश्चित है ।
- अपराध की जानकारी ही सुधार का बीज है ।
- अपराध के प्रति भयभीत रहने वाला कभी अपराध नहीं कर सकता और यदि अपराध हो भी जाये तो वह आत्मग्लानि करता है ।
- जो अपराधों से भयभीत होता है, वही गुरु के सामने सत्य आलोचना करता है ।
- जो असभ्य, अविवेकी हैं, जिसे कर्मों से भय नहीं वह अपराध स्वीकार नहीं करता ।
- अपराध बोध जीवनोत्थान का मूलमंत्र है ।
- अपराध बोध आत्मोत्कर्ष, आत्मोन्नति तथा आत्म विकास का सोपान है ।
- अपराध बोध हो जाना ही, मुक्ति का मार्ग है ।
- अपराधों के प्रति पश्चाताप जाग्रत हो जाना ही उनसे छूटने का साधन है ।
- अपराध बोध होना परमावश्यक है ।
- अपराध बोध के बिना अपराधों से सम्यक् मुक्ति संभव नहीं है ।
- अपराध बोध के अभाव में व्यक्ति, अपराध दर अपराध करने लगता है ।
- अपराध को समझने की कसौटी भी अपने हाथ में ही है ।
- अपराध को समझ लेना ही अपराध बोध का परिचायक है ।
- यदि एक - एक अपराध नष्ट होते गये तो एक दिन सारे अपराध नष्ट हो जायेंगे ।
- अपराध से मुक्ति हो पाए या न हो पाए लेकिन उसका बोध

जरुर होना चाहिए ।

- अपने अपराधों को स्वीकार कर लेने से या निंदा करने से कर्मों की संवर, निर्जरा होती हैं ।
- सम्यग्दृष्टि से अपराध होता है तो उसे पश्चाताप भी होता है इसलिये उसकी संवर, निर्जरा होती है ।
- जिसने गल्ती को गल्ती मान लिया है वह एक दिन अवश्य उसे छोड़ने का प्रयत्न करेगा परंतु जो गल्ती को गल्ती स्वीकार ही नहीं करता वह उससे छूटने का प्रयत्न भी क्यों करेगा ?
- 'अपराध - बोध' वह अमृत रसायन है जिसका पान करने वाला अजर अमर पद को पाता है ।
- जो सरल परिणामी होते है, पापों से भय खाते है, संसार वृद्धि नहीं करना चाहते उन्हें ही अपराध का बोध शीघ्र हो जाता है ।
- अपराध बोध आत्म विशुद्धि का प्रतीक है ।
- 'अपराध - बोध' जीवन में उन्नति व प्रगति के द्वार खोल देता है ।
- 'अपराध - बोध' हो गया तो अब पाप मुक्त होने में देर नहीं है ।

पश्चाताप

- पश्चाताप वह साधना है, जिससे बहुत बड़े कर्म धुल जाते हैं ।
- पश्चाताप आत्मा में लगे हुए पाप रुपी मैल धोने के लिये साबुन की तरह है ।
- पश्चाताप जिसे नहीं हुआ, वह कभी अपराधों से मुक्त नहीं हो सकता ।
- कृत पापों के विषय में पश्चाताप करने वाला ही सम्यग्दृष्टि है ।
- जहाँ से व्यक्ति के अंदर पापों के विषय में पश्चाताप प्रारंभ हो जाता है, वहाँ से जीवन में परिवर्तन आने लगता है ।
- पश्चाताप व्यक्ति के जीवन में परिवर्तन लाता है ।
- पश्चाताप व्यक्ति के जीवन में नया मोड़ लाता है ।
- पश्चाताप हृदय परिवर्तन का माध्यम है ।
- पश्चाताप समस्त पापों का प्रक्षालन करने का एक मंत्र है ।
- पश्चाताप सम्यग्दृष्टि जीव ही करता है मिथ्यादृष्टि नहीं ।
- सम्यग्दृष्टि जब अपराध के फल को जानता है, तब उसे संसार से भय उत्पन्न होने लगता है, वह घबड़ता है और उसका अंत:करण पश्चाताप के अश्रुओं से भर आता है ।
- सम्यग्दृष्टि भोग भोगता हुआ भी नहीं भोगता है क्योंकि वह है पश्चाताप से भरा होता है ।
- जब तक व्यक्ति के अंदर सम्यग्दर्शन नहीं होता तब तक दोषों के प्रति पश्चाताप नहीं होता ।

दुर्जन

- दुर्जन की संगति हमारे जीवन का विनाश कर देती है।
- दुर्जन एक कालकूट विषवत् है।
- दुर्जन की संगति कभी नहीं करनी चाहिए।
- दुर्जन का कभी पोषण नहीं करना चाहिए।
- दुर्जन का जितना पोषण करते जाओगे, वह उतना ख़तरनाक होता जायेगा।
- दुर्जन को चाहे कितना भी उपदेश दो, वह उसे हितकर नहीं लगता। जैसे - सर्प को चाहे जितना दूध पिलाओ वह विष ही उगलेगा। ठीक वैसे ही दुर्जन का स्वभाव होता है।
- दुर्जन कोयला की तरह होता है जो कभी सफेद नहीं हो सकता।
- जो जैसी मैत्री करता है वह वैसा ही हो जाता है जैसे लोहे की छड़ी पर सुवर्ण का पानी चढ़ा दिया जाये तो वह स्वर्ण रुप दिखाई देता है। अर्थात् दुर्जन की संगति से दुर्जन और सज्जन की मित्रता से मनुष्य सद्पुरुष होता है।
- शिष्ट, सज्जन पुरुष भी दुष्ट की संगति करने से दुर्जन हो जाता है।
- दुर्जन के दोषों का संसर्ग करने से मनुष्य नीच हो जाता है।
- सज्जन के सहवास से दुर्जन भी उसके गुणों से सम्पन्न हो जाता है।

निंदा

- दिगम्बर संतों की निंदा करना महादुःखों को बुलाना है।
- मुनियों की निंदा करना सबसे बड़ा पाप है।
- दिगम्बर संतों का उपहास महापाप का कारण है।
- दिगम्बर संतो की निंदा करने से, उपहास करने से निधत्ति निकांचित जैसे महापापों का बंध होता है और दिगम्बर साधुओं की उपासना से ही इन महापापों का प्रक्षालन होता है।
- दिगम्बर मुनियों की बुराई करना, कुत्ते की मौत मरना है।
- दिगम्बर संतों की निंदा करना दुर्गति में पड़ना है।
- दिगम्बर संतों की निंदा करने वाला पापी है और सुनने वाला उससे बड़ा पापी है।
- दिगम्बर संतों की बुराई ही स्वयं का विनाश है।
- दिगम्बर संतों की निंदा से तिर्यंच जैसे भवों में कूकरी - सूकरी बनना पड़ता है।
- दिगम्बर संतों की निंदा करना, बुराई करना स्वयं का मन ख़राब करना है।
- दिगम्बर संतों की निंदा मत करो, निंदा करना है तो अपनी करो।
- स्वयं के दोषों की निंदा करने से कर्मों (पापों) का प्रक्षालन होता है।

भ्रांति

- अशांति की सबसे बड़ी भूमिका है, - भ्रांति ।
- भ्रांति वश प्राणी सर्वाधिक दु:खी है ।
- चाहे गरीब हो या अमीर सभी एक मात्र भ्रम रोग से पीड़ित हैं ।
- जो दो सत्यों के मध्य खड़ी हो जाये वह है - भ्रांति ।
- सीप, चाँदी रुप और चाँदी, सीप रुप दिखने लगे ऐसी अवस्था का नाम ही भ्रांति है ।
- भ्रांति हमेशा दूरी में रहती है ।
- जब तक दूरियाँ रहती हैं, तब तक ही गलत फहमी, भ्रांति रहती है ।
- निकट रहने से समस्त भ्रांतियाँ दूर हो जाती हैं ।
- भ्रांतियाँ मन और मस्तिष्क दोनों को बैचेन कर देती है ।
- भ्रांतियों से ही शांति समाप्त हो जाती है ।
- भ्रांति में मित्र भी नजर नहीं आता है ।
- भ्रांति से भगवान नजर नहीं आते हैं ।
- भ्रांतियों में वास्तविकता नजर नहीं आती है ।

मित्रता

- शत्रुता, बैर या विरोध की समाप्ति का परम मंत्र है - मित्रता ।
- शत्रु के प्रति मित्रता का हाथ बढ़ा देना ही शत्रुता का अंत है ।
- बैर से बैर का अंत नहीं, प्रेम व्यवहार से होता है ।
- जिस प्रकार अग्नि को अग्नि नहीं बुझा सकती उसी प्रकार कटुता या वैमनस्यता रुपी अग्नि नहीं बुझ सकती ।
- अग्नि बुझाने के लिये जल की आवश्यकता होती है उसी प्रकार शत्रुता रुपी आग को बुझाने के लिये मित्रता या प्रेम व्यवहार रुपी जल की आवश्यकता होती है ।
- मित्र हो तो ऐसा जो दो टूटे हृदय को मिला दे, जोड़ने का काम करे ।
- जो यह सोचे कि मैं संबंधों को तोड़ने नहीं दूँगा, वही मित्र है ।
- किंतु जो दो में जाकर विघटन के बीज डालता है, वह मित्र नहीं शत्रु है ।
- दूरियों को समाप्त कर देना ही मित्रता है ।
- जो सम्पत्ति व विपत्ति दोनों स्थिति में समान रुप से स्नेह करता है वह मित्र है ।
- जो शत्रु द्वारा पीड़ित किये जाने पर एक - दूसरे की रक्षा करते हैं वे मित्र हैं ।
- व्यक्ति को ऐसे मित्र का परित्याग कर देना चाहिए जो उसकी पीठ पीछे उसके कार्य को हानि पहुँचाता है, बुरा - भला कहता है और सामने मीठी - मीठी बातें करता है ।

- सज्जन लोग ने अच्छे मित्र के लक्षण बताये हैं कि वह मित्र को पापों से दूर रखता है, उसे अच्छे हितकर कार्य में लगाता है, उसके गुप्त रहस्यों को छिपाये रखता है, उसके गुणों को उजागर करता है, आपत्ति में उसका साथ नहीं छोड़ता है और आवश्यकता पड़ने पर उसे धन भी देता है।
- संसार में केवल मित्रता ही ऐसी चीज है जिसकी उपयोगिता के सम्बंध में दो मत नहीं हैं।
- शायद सबसे आनंद दायक मित्रताएँ वे हैं, जिनमें बड़ा मेल है बड़ा झगड़ा है फिर भी बड़ा प्यार है।
- वही मैत्री घनिष्ठ है, जिसमें अपनी इच्छा के अनुकूल व्यक्ति अपने को समर्पित कर दे।
- सच्ची मित्रता वही है, जिसमें मित्र आपस में स्वतंत्र रहें और दूसरे पर दबाव न डाले।
- वह मित्रता किस काम की, जिसमें मित्रता के नाम पर लिये गये काम की स्वतंत्रता में सहमति न हो।
- सच्चा मित्र अपने मित्र को नहीं छोड़ सकता भले ही वह उसके विनाश का कारण क्यों न हो।
- जो व्यक्ति किसी को हृदय से दीर्घ काल से प्रेम करता है वह मित्र से घृणा नहीं कर सकता भले ही बार - बार हानि क्यों न पहुँचाये ?
- जो कुपथ से हटाकर सुपथ पर लगाये कुमार्ग से हटाकर सन्मार्ग दिखाये, दोषों से बचाए, उन्नति के पथ को प्रशस्त करें तथा विपरीत परिस्थितियों में संबल प्रदान करे वही सच्चा मित्र है।

प्रसन्नता

- प्रसन्नता सभी सद्‌गुणों की माँ है।
- चित्त की प्रसन्नता ही व्यवहार में उदारता बन जाती है।
- प्रसन्न चित्त व्यक्ति अधिक जीते हैं।
- प्रसन्नता को हम जितना लुटायेंगे, उतनी ही अधिक प्रसन्नता आयेगी।
- सदैव प्रसन्न रहना चाहिये। इससे मस्तिष्क में अच्छे विचार आते हैं और चित्त शुभ कार्यों की ओर लगा रहता है।
- यदि हम प्रसन्न हैं , तो सारी प्रकृति ही हमारे साथ मुस्कराती है।
- प्रसन्न रहने से हर कार्यों में उत्साह बना रहता है।
- जो सदैव प्रसन्न रहता है उसके परिणाम निर्मल होते है।
- प्रसन्न रहने वाला शारीरिक रुप से भी स्वस्थ रहता है तथा मानसिक रुप से भी।
- यदि हमें स्वयं को प्रसन्न रखने की कला है तो जीवन में कितनी भी विपरीत परिस्थितियाँ, संकट आ जाए, प्रतिकूलताएँ आ जाए वे सब सहजता में टल जाती है।
- प्रसन्न चित्त के पास दुनियाँ आती है उसे अपना बनाती है इसके विपरीत अप्रसन्न चित्त के पास से सब दूर हो जाते है।

लक्ष्य

- जीवन एक साधन है साध्य की प्राप्ति के लिये ।
- जीवन की सार्थकता तभी है, जब साध्य प्राप्ति का लक्ष्य हो ।
- यदि जीवन साधना में साध्य प्राप्ति का लक्ष्य नहीं, तो ऐसी साधना निरर्थक है ।
- जीवन में बढ़ते कदमों की कोई सम्यक् दिशा नहीं हैं, तो सारे कदम व्यर्थ हैं अर्थात् उन कदमों की कोई कीमत नहीं ।
- जीवन में लक्ष्य विहीन कदम शून्यता के कदम हैं ।
- जीवन में लक्ष्यविहीन कदम मूर्खता के कदम माने जाते हैं ।
- ज्ञानी के प्रत्येक कदमों में लक्ष्य छिपा होता है । बिना लक्ष्य के उसके एक भी कदम नहीं बढ़ते हैं ।
- मोक्षमार्ग में बढ़ने के पूर्व, लक्ष्य को ध्यान में रख लेना परमावश्यक है ।
- मूर्तिकार या शिल्पकार की दृष्टि में मूर्ति का आकार अर्थात् लक्ष्य पहले नजर आता है ।
- हमारे महान तीर्थंकरों ने प्राणी मात्र को देशना दी, कि हे प्राणी ! तुम पथ पर बढ़ने के पहले, मंजिल का लक्ष्य बना लेना ।
- आपके जीवन में मुक्ति - मंजिल का यदि लक्ष्य नहीं, तो आपके कदम निस्सार है ।

- लक्ष्य विहीन प्राणी भटकन में ही हीरा जैसा जन्म गँवा देता है और पशुओं की भांति जीकर मर जाता है ।
- जिसके अंदर लक्ष्य समाहित हैं वह ज्ञानी है ।
- जिसके लक्ष्य में दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ की परम भावना है वह ज्ञानी है ।
- जिसके जीवन में लक्ष्य होता है, उसके लिये मंजिल दूर नहीं है ।
- लक्ष्य ध्यान में रखने वाला कभी उलझता नहीं है ।
- लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए, कदम बढ़ाना परम अनिवार्य है ।
- जीवन में लक्ष्य बनाना तदनुसार कदम बढ़ाना परमावश्यक है ।
- लक्ष्य की मात्र रट लगाने वाला मंजिल प्राप्त नहीं कर सकता है ।
- लक्ष्य के प्रति सम्यक् समर्पण ही लक्ष्य की सिद्धि कराता है ।
- जिसकी दृष्टि लक्ष्य पर केंद्रित होती है वह व्यक्ति देखता हुआ भी न देखने के समान है, चलता हुआ भी न चलने के समान है तथा बोलता हुआ भी न बोलने के समान है ।
- लक्ष्य विहीन व्यक्ति की कुछ कीमत नहीं । वह तो व्यर्थ में ही मानव जीवन को गंवा देता है ।

वैराग्य

- जहाँ सम्यग्ज्ञान होता है वहाँ वैराग्य अवश्य होता है ।
- जहाँ वैराग्य होता है वहाँ वस्तु का त्याग अवश्य होता है ।
- जहाँ वस्तु को त्यागने का भाव उत्पन्न हो जाय उसे वैराग्य कहते हैं ।
- वैराग्य के साथ अंतरंग से होने वाला त्याग ही वास्तविक त्याग है ।
- वैराग्य के संस्कार साधारण, सरल नहीं होते हैं ।
- हमारे अंदर जो अनादि कालीन विषय भोगों के संस्कार जमें हुये हैं वे हट जायें उसे वैराग्य कहते हैं ।
- जब व्यक्ति को वैराग्य होता है, उस समय उसका साहस धैर्य और शक्ति बहुत विशाल हो जाती है ।
- जब वैराग्य होता है तब प्रतिकूलता से टकराने की शक्ति उसमें आ जाती है ।
- वैराग्य जब होता है तब वह विपत्तियों के पर्वत को अपने सिर पर रखना चाहता है । समस्त जंजीर को तोड़ देता है अपने प्राणों को साधना पर न्यौछावर कर देता है । वैराग्य तो अंतरंग में होता है ।
- केवल घर का त्याग वैराग्य नहीं है । बल्कि घर में रहने वालों का त्याग करना वैराग्य है ।
- संसार भ्रमण के कारणों से विरक्त होना वैराग्य है ।
- विरक्ति की भावना वैराग्य है ।

- वैरागी व्यक्ति शरीर को छोड़कर आत्मा को लक्ष्य बनाते हैं ।
- उपसर्गों तथा संघर्षों में समता भाव को धारण करना होगा तभी हमारे जीवन में उस वैराग्य का वास्तविक रुप प्रतिलक्षित होगा ।
- यदि हम कुटुम्बी तथा सामान्य श्रावक को अलग - अलग दृष्टियों से देखते हैं तो यह हमारा वैराग्य नहीं ।
- वैरागी व्यक्ति को प्रत्येक में श्रावक का रुप दिखाता है ।
- जहाँ राग नष्ट होता है वहाँ वैराग्य का जन्म होता है ।
- जहाँ कुटुम्बियों से राग समाप्त हो गया, सभी के प्रति समदृष्टि हो गई उस समय से वैराग्य की भूमिका प्रारंभ होती है ।
- वैराग्य क्षणिक नहीं स्थायी, अकंप - निश्चल - अडिग होता है ।
- जब अंतरंग में ज्ञान व श्रद्धा होती है तब वैराग्य स्थिर होता है ।
- वैरागी का कोई परिचय नहीं होता और वैरागी को किसी के परिचय की आवश्यकता नहीं होती है ।
- रागी कर्मों से बंधता है वैरागी कर्मों से छूटता है ।
- वैरागी से आत्मसुख प्राप्त होता है, दुःखों का नाश होता है, शरीर निरोगी रहता है तथा वैराग्य के बल से ही एक दिन निर्वाण की प्राप्ति होती है ।
- हे भव्य ! तू सदा उस श्रेष्ठ वैराग्य की उपासना कर जो पाप को दूर करने वाला है, मुक्ति स्त्री को देने में समर्थ है, पाप नामक वृक्ष के लिए कुठार है व सुख की खान है ।

समय

- समय की कीमत करना ही सबसे बड़ा विवेक है ।
- समय जीवन की अमूल्य निधि है ।
- समय ही धन है ।
- विश्व में प्रत्येक कार्य समय पर निर्भर हैं ।
- समय को व्यर्थ मत खोओ, न जाने कब जीवन का अंत हो जाये ।
- समय का सदुपयोग करना सीखो ।
- समय बहुत सूक्ष्म है ।
- समय की कीमत करने वाला ही संसार समुद्र से पार हो सकता है ।
- जिन्होंने समय की कीमत की तथा समय का सम्यक् उपयोग किया, उनका जीवन ही पावन एवं पवित्र बना ।
- समय और तूफान किसी की प्रतीक्षा नहीं करता ।
- संसार में प्रत्येक वस्तु को धन से खरीदा जा सकता है, किन्तु समय को नहीं खरीदा जा सकता ।
- संसार के समस्त कार्य समयानुसार ही सुचारु रुप से संचालित है ।
- कोई कार्य समय से हटकर नहीं होता है ।
- मानव जीवन समय का सदुपयोग करने के लिये मिला है कीमती समय को विषय भोगों में फंसकर तथा राग -रंग में बर्बाद मत करो ।

संत समागम

- संत समाज के परम आदर्श होते हैं ।
- संतों के उपदेशों से शांति एवं आनंद की धारा प्रवाहित होती रहती है ।
- जो समाज संतों की उपेक्षा कर आदर - सम्मान नहीं करता, वह मुर्दा समाज है ।
- संत समागम का प्रभाव सीधा आत्मा पर पड़ता है ।
- संत समाज को सम्यक् बोध देते हैं ।
- संत मानव जीवन को संस्कारित करते हैं ।
- संत मानव को मुक्ति की मंजिल तक ले जाते हैं ।
- संत ही मानव को कर्मों का अंत करने की विधि बतलाते हैं ।
- संत आत्मा को स्वस्थ करने का टॉनिक पिलाते हैं ।
- संत धर्म की जीवंत मूर्ति होते हैं ।
- संतों के समागम में आया नास्तिक भी आस्तिक हो जाता है ।
- संतों के समागम से जीवन में श्रद्धा - भक्ति उत्पन्न होती है ।
- संत समागम के माध्यम से जन समुदाय अपने जीवन में श्रद्धा - भक्ति, सेवादि का पाठ सीख जाते हैं ।
- संत जीवन को प्रकाशित करने वाले होते हैं और सम्यक् मार्ग का दर्शन कराने वाले होते हैं ।
- संत समाज की वह शक्ति है जो टूटी हुई समाज को जोड़ देती है ।

- संत जीवन में एकता - संगठन के सूत्र पढ़ाते हैं ।
- संत तोड़ना नहीं जोड़ना सिखाते हैं ।
- संत कैंची नहीं सुई का काम सिखाते हैं ।
- संत समाज को हरा - भरा कर देते हैं ।
- संत समागम से अनुभव मिलता है ।
- संत समागम से आनंद और खुशी की वर्षा होती है ।
- संत समाज को धर्म संस्कारों से सींचते है ।
- संतों की कृपा, अनुकंपा जिसे प्राप्त हो जाती है वह सदैव हरा भरा बना रहता है ।
- संत एक अनुपम प्रकाश पुंज है जो अपनी दिव्य ज्योत्सना से सारे संसार को प्रकाशित कर देते है ।
- संत एक ऐसे बगियाँ के माली है जिसमें सद्‌गुण रुपी पुष्प खिला करते है ।
- संतों का सामीप्य एक अनुपम शांति व सुख की संवेदना कराता है ।
- संतों के निर्मल परिणामों नि:सृत आभामण्डल संपर्क में आने वालों में सुख की संवेदनाओं को संचारित करता है इसी कारण उनके संपर्क में आने वाला कभी उनसे दूर नहीं जाना चाहता ।

संस्कार

- संस्कार से व्यक्ति का जीवन बहुत ऊँचा उठ जाता है ।
- संस्कार से हमारे जीवन में महानता आती है ।
- संस्कार से उन्नति और विकास होता है ।
- संस्कार ही हमें अपने लक्ष्य तक पहुँचा देते हैं ।
- संस्कारवान व्यक्ति की हर जगह प्रतिष्ठा रहती है ।
- संस्कार हमें भक्त से भगवान बना देते हैं ।
- संस्कार के साथ हमारे प्रत्येक कदम बढ़ते जायें तो हम अपनी चरम सीमा तक पहुँच सकते हैं ।
- संस्कार वान व्यक्ति कहीं भी चला जाये वह सम्मान पाता है ।
- संस्कार नर से नारायण बना देते हैं ।
- संस्कार पतित से पावन बना देते हैं ।
- संस्कार भक्त से भगवान बना देते है ।
- संस्कार से पत्थर भी पूजनीय हो जाता है ।
- सत् संस्कार विकास की पृष्ठ भूमि है तो बुरे संस्कार अवनति की ।
- संस्कारवान की परिचर्या - उठना, बैठना खाना, सुव्यवस्थित होता है ।
- संस्कार जीवन को खुशियों, आनंद व शांति से भर देते है ।
- संस्कार विहीन व्यक्ति पशु तुल्य होता है ।

सदाचार

- सदाचार वह उपलब्धि है जिसके अभाव में मोक्षरुपी मंजिल की प्राप्ति कदापि संभव नहीं है ।
- जीवन निर्माण का मूलमंत्र है - सदाचार और यही जीवन को जीवंत करने वाला मंत्र है ।
- सदाचार आधार स्तंभ है जिसके अभाव में जीवन जीने की कला संभव नहीं है ।
- जीवन विकास का आधार बिंदु है - सदाचार ।
- सदाचार वह प्रारंभिक बिंदु है जहाँ से बनने का रास्ता प्रारंभ होता है और मानवता का निर्माण होता है ।
- **सदाचार: प्रथमो धर्म:** सदाचार मानव जीवन का प्रथम पाठ है ।
- सदाचार के बिना मानव जीवन निरर्थक या निस्सार है ।
- जीवन निर्माण की प्रक्रिया सदाचार से प्रारंभ होती है ।
- सदाचार मानव जीवन की आधार शिला है ।
- सदाचार ही मानव का श्रृंगार है ।
- संस्कृति की सुरक्षा सदाचार पर आधारित है ।
- जहाँ सदाचार नहीं, वहाँ धर्म का वास नहीं ।
- सदाचार विहीन ज्ञान का कोई महत्व नहीं है ।
- ज्ञान का फल सदाचार का पालन है न कि विभूति अर्जित करना ।
- ज्ञान का उत्कृष्ट फल सदाचार का पालन करना है, जबकि सदाचार सहित ज्ञान से कर्मों से छुटकारा मिलता है ।
- सदाचार का अर्थ समीचीन आचार है ।

- आचार - विचार की शुद्धि ही सदाचार है ।
- जब तक जीवन सदाचारमय रहता है तब तक मानव का उत्थान - विकास संभव है ।
- सदाचार से पतित होते ही, अवनति प्रारंभ हो जाती है ।
- सदाचार के अभाव में मानव, महानता से वंचित रहकर, दानव का रुप धारण कर लेता है ।
- अपने जीवन में सदाचार का सृजन करो ।
- भगवान बनने का रास्ता सदाचार से प्रारंभ होता है ।
- जिस मनुष्य का आचरण पवित्र है, सभी उसकी वंदना करते हैं , इसलिये सदाचार को प्राणों से भी बड़ा समझना चाहिये ।
- अपने आचरण की पूरी देख - रेख करो क्योंकि तुम जगत में कहीं भी खोजो सदाचार से बढ़कर सच्चा मित्र कहीं नहीं मिलेगा ।
- सदाचारी सम्मानित परिवार को प्रकट करता है, परन्तु दुराचारी कलंकित लोगों की श्रेणी में जा बैठता है ।
- धर्म शास्त्र यदि विस्मृत हो जाएँ, तो फिर याद कर लिये जा सकते हैं परन्तु सदाचार से स्खलित हो गये तो सदा के लिये अपने स्थान से भ्रष्ट हो जाते हैं ।
- दृढ़ सदाचारी कभी भ्रष्ट नहीं होते, क्योंकि वे जानते हैं कि इस प्रकार भ्रष्ट होने से कितनी आपत्तियाँ आती हैं ।
- सदाचार, सुख - सम्पत्ति का बीज होता है परन्तु दुष्ट - प्रवृत्ति असीम आपत्तियों की जननी है ।
- मानव समाज में सदाचारी का सम्मान होता है ।
- सदाचार है तो दु:ख पूर्ण संसार भी स्वर्ग है यदि दुराचार है तो सुख पूर्ण स्वर्ग भी नरक है ।

- धार्मिकता, नैतिकता, बुद्धिमत्ता और आत्मदृढ़ता यह सदाचार की चार कसौटियाँ हैं ।
- सदाचार के बिना सुख पाने का यत्न करना आकाश कुसुम के सदृश है ।
- अधिक संपत्ति सदाचार की शिक्षिका नहीं दुराचार की दूती है ।
- सदाचारी का मन सदैव प्रशन्नता से भरा रहता है ।
- सदाचार नींव का पत्थर है जिसके ऊपर चारित्र रुपी मंजिल खड़ी होती है ।
- जहाँ सदाचार है वहाँ सभ्यता है, सज्जनता है तथा गुणों का विकास है ।
- प्रथम तो दुराचारी के पास कोई गुण आते ही नहीं है और यदि पहले से कुछ हो भी, तो भी वे शीघ्र नष्ट हो जाते है ।
- सदाचारी जहाँ भी जाता है सर्वत्र सम्मान पाता है तथा दुराचारी का पग - पग पर अपमान / तिरस्कार होता है ।
- सदाचारी का मन पवित्र होता है तथा पवित्र मन के द्वारा ही सृजनात्मक, रचनात्मक बौद्धिक आदि कार्य कुशलता पूर्वक संपन्न किये जाते है ।
- सदाचारी अपने अच्छे आचरण की सुगंधि सर्वत्र फैलाता है ।

रात्रिभोजन

- अनेक महारोगों का खुला निमंत्रण, रात्रि - भोजन है ।
- रात्रि - भोजन करने वाला महा हिंसक होता है ।
- रात्रि - भोजन करने वाले को साक्षात् मांसाहारी कहा जाता है ।
- जो रात्रि में भोजन करता है उसे निशाचर कहते हैं क्योंकि निशाचर को छोड़कर प्राय: कोई भी जीव रात्रि - भोजन नहीं करता ।
- रात्रि - भोजन त्याग मात्र जैनत्व का परिचायक नहीं, किन्तु दया धर्म का परिचायक है, क्योंकि रात्रि - भोजन करने वाला सबसे बड़ा पापी, क्रूर तथा अधम है ।
- सूर्यास्त होने के पश्चात् पानी खून - पीने के समान एवं अन्न मांस भक्षण के समान है ।
- रात्रि भोजन छोड़ सच्चे मानव बनों और मानवता का निर्माण कर मुक्ति की यात्रा सफल करो, यही जीवन का सार है ।
- जो पुरुष रात्रि भोजन को छोड़ता है उसे एक वर्ष में छह महीनें के उपवास का फल मिलता है ।
- रात्रि में भोजन करने वालों को हिंसा अनवरत् होती है ।
- हिंसा के त्यागी को रात्रि भोजन का त्याग करना चाहिए ।

राग

★ राग दो प्रकार का होता हैं एक प्रशस्त राग और दूसरा अप्रशस्त राग।

★ रागादि भाव तो कर्मों के उदय से होते हैं, अत: वे आत्मा का स्वभाव न होने से हेय हैं।

★ राग भाव जो मोक्ष का निमित्त भी हो तो आस्रव का ही कारण है।

★ रागी जीवों के वन में रहते हुए भी दोष विद्यमान रहते हैं, परन्तु जो राग से विमुक्त हैं उनके लिये घर भी तपोवन है।

★ म्यग्दृष्टि भोगों का सेवन करता हुआ भी वास्तव में भोगों का सेवन करने वाला नहीं कहलाता है, क्योंकि राग रहित जीव के बिना इच्छा के किये गये कर्म राग को उत्पन्न करने में असमर्थ हैं।

★ राग, द्वेष से अधिक खतरनाक है।

★ राग की वेदना को मेटने का उपाय यह है कि राग के विषय भूत पदार्थ को अपने से भिन्न मानो।

★ राग एक ऐसी आग है जो प्राणी को निरंतर जलाती है।

★ राग से कर्म का बंध होता है तथा विराग (वैराग्य) से जीव कर्मों के बंधन से मुक्त हो जाता है अत: राग से बचने का यथाशक्य प्रयत्न करना चाहिए।

आँख

★ आँख से व्यक्ति के विचारों को जाना जा सकता है।

★ आँख से व्यक्ति को पढ़ा जा सकता है।

★ आँखें बहुत कुछ बताती हैं क्योंकि आँखें मन का दर्पण होती है।

★ वैरागी की आँखों में वैराग्यता झलकती है।

★ पापी की आँखों में पाप झलकता है।

★ छली व्यक्ति की आँखों में छल दिखता है।

★ जैसे भाव हैं वैसी आँखें होती हैं।

★ सारे के सारे पाठ व्यक्ति की आँखों से पढ़े जा सकते हैं।

★ आँखों से अंतरंग परिणामों को पढ़ा जा सकता है।

★ क्रोध में आँखें लाल हो जाती हैं। क्रोध की आँखें कठोर होती हैं।

★ मोक्ष श्रद्धा रुपी अंतरंग आँखों से दिखता है।

★ बाहर की आँखों को खोलना सरल है लेकिन अंतरंग के नेत्रों को खोलना बहुत कठिन है।

★ गुरु, शिष्य की आँखों को देखकर उसके जीवन को पढ़ लेते हैं।

★ भगवान की जब आँख देखते हैं तो वीतरागता झलकती है।

★ संतों की आँखें चर्म की नहीं ज्ञान की होती हैं। संतों की आँखों में दया झलकती है।

नया वर्ष

★ नया वर्ष हमारे जीवन में नयापन लाता है ।

★ नया वर्ष नई जागृति लाता है ।

★ श्रमण धर्म ही जीवन का आधार हो, यही नये वर्ष के आगमन का संदेश होना चाहिये ।

★ नवीन एवं पुरातन वर्षों से हमारा मात्र इतना संबंध होना चाहिए कि हम नये वर्ष में क्या करें और पुराने वर्ष में क्या किया था ? विचारें ।

★ नया वर्ष यही कहता है कि प्रत्येक साधक, प्रत्येक श्रावक को चाहिये कि वे भी अपने जीवन व्यापार का लेखा तैयार करें और विचार करें हमें कितना धर्म लाभ हुआ है ?

★ नया वर्ष यही कहता है कि पाप - पुण्य का लेखा - जोखा बनाना चाहिए ।

★ नये वर्ष का व्यापार विवेक के साथ हो तथा हमको लाभ हो, हानि न उठाना पड़े ।

★ नये वर्ष में पूर्व वर्ष का व्यय एवं नये वर्ष का उत्पाद हुआ ।

★ नये वर्ष का प्रत्येक दिन मानो जीवन में नया प्रकाश सबेरा, नये संस्कार प्रदान करें ।

★ हमारे जीवन के प्रत्येक क्षण, प्रत्येक कदम, वर्ष के प्रथम दिन से जीवन उत्थान के लिये होना चाहिए ।

★ नये वर्ष के नये दिन में हमें आत्म कल्याण के लिये, आत्म - लाभ के लिये प्रयास करना चाहिए ।

★ नये वर्ष के नये दिन में हमें आत्म उत्थान के लिये सम्यक् आचरण रुपी व्यापार शुरु करना चाहिए ।

★ आपके अंदर एक भी नियम आ गया समझो नये वर्ष का सुप्रभात, आचरण के साथ प्रारंभ हो गया ।

★ नये वर्ष का प्रत्येक क्षण, धर्म के साथ होना चाहिए ।

★ नये वर्ष का नया हर्ष, तुम्हें सुख व शांति की सतत् धारा के प्रवाह में ले जायेगा ।

★ जब जीवन में संयम रुपी दीप जल जाये वही जीवन का नया वर्ष है ।

★ प्रति क्षण इस जीव का अवीचिमरण चल रहा है अत: जीवन के प्रत्येक क्षण को नया मानकर पवित्र मन से प्रत्येक कार्य करें ।

★ जैसे नये वर्ष के आने पर लौकिक जन नये वस्त्र पहनते है, नवीन - नवीन सामग्रियाँ खरीदते है नया स्कूटर, टी.वी. कार आदि खरीदते है एक दूसरे का अभिवादन करते है उसी प्रकार साधक जन जीवन के प्रत्येक समय को नया - नया मानकर नवीन - नवीन विशुद्ध परिणाम करते है तथा निरंतर अपनी साधना में वृद्धि करते है ।

उपसर्ग विजेता प.पू. गणाचार्य श्री विराग सागर जी महाराज द्वारा लिखित, सम्पादित एवं संकलित तथा श्री सम्यग्ज्ञान दिग. जैन विराग विद्या पीठ भिण्ड द्वारा प्रकाशित

क्र. सत् साहित्य

१. **संस्कृत टीका साहित्य**
वारसाणुवेक्खा (सर्वोदयी टीका संस्कृत)

२. **शोधपूर्ण साहित्य**
● शुद्धोपयोग ● सम्यग्दर्शन ● आगम चक्खू साहू
● सल्लेखना से समाधि ● संत साधना के प्रेरक प्रसंग
● परम दिगम्बर जैन मुनि(हिन्दी,मराठी,तमिल,कन्नड, इग्लिश)
● सर्वोदयी दिगम्बर जैन धर्म ● तीर्थंकर दिव्य दर्शन
● तीर्थंकर दर्शन ● व्यसन विचार (हिन्दी, मराठी, इग्लिश)
● फूल नहीं हैं कांटे ● संस्कार सुरभि
● आध्यात्मिक तत्व-चर्चा ● जिनेन्द्र दर्शन जिनेन्द्र पूजन
● आध्यात्मिक शंका-समाधान

३. **चिंतन साहित्य**
चैतन्य चिंतन भाग-१,२,३

४. **बालकोपयोगी साहित्य**
● बाल विज्ञान भाग-१,२,३ (हिन्दी, इंग्लिश, मराठी, कन्नड)
● बाल विज्ञान भाग-४ ● कर्म विज्ञान भाग-१ (हिन्दी, इंग्लिश)
● कर्म विज्ञान भाग-२,३

५. **कथा साहित्य**
नैतिक कथा मंजूषा भाग-१,२,३

६. **अनुवाद साहित्य**
● वारसाणुवेक्खा ● परमस्तार्चना संग्रह ● सामायिक पाठ

७. **पद्य साहित्य**
● भावों के विशुद्ध क्षण ● मुक्ताञ्जलि भाग १,२
● नव देवता निर्वाण क्षेत्र पूजा

८. **संकलित/सम्पादित साहित्य**
● साधना से समाधि ● विमल नित्य पाठावली
● आराधना ● सुभाषित सहस्रं ● आप्त अर्चना

● मानतुंग की अमरभक्ति (सचित्र भक्तामर) ● साधना
● अनुप्रेक्षा ● जिनागम दीप ● सम्मेद शिखर विधान
● चारित्र शुद्धि व्रत ● साधना के सोपान ● करुणामूर्ति संत
● तपस्वी सम्राट ● यज्ञोपवीत विधि

९. **एकांकी/नाटक साहित्य**
● सत्य मित्र-सत्य दृष्टि ● प्रद्युम्न हरण

१०. **पू.आचार्यश्री के व्यक्तित्व पर आधारित साहित्य**
● विरागाभिवंदन अभिनंदन ● निस्पृही संत भाग-१,२
● विराग सेतु (महाकाव्य)
● संत काव्य की परम्परा में आचार्य विरागसागरजी
● कमल से महाकमल ● घटनायें ये जीवन की
● दिगम्बरत्व के चितेरे ● विराग सिंधु की उर्मिया
● विराग वाटिका ● भक्ति की झंकार

११. **प्रवचन साहित्य**
● धर्म पीयूष ● ऐसे चलो मिलेगी राह ● दूर नहीं है मंजिल
● उड़ रे पंछी ● तीर्थंकर वर्धमान
● पहले देव पूजा फिर काम दूजा ● तीर्थंकर ऐसे बनो
● तट की ओर ● सिर्फ दो प्रवचन ● इष्टोपदेश
● मानतुंग की अमर भक्ति ● कल्याणक महोत्सव
● दान तीर्थ ● धर्म के दश सोपान
● जीवों पर दया करो- शुद्ध शाकाहार करो
● बुराईयाँ ही जेल- अच्छाईयाँ ही मुक्ति
● प्रवचन वर्षा ● कर्तव्य मेव कर्तव्यं ● श्रद्धा प्रसून
● मोक्ष की राह ● विरागामृत ● समाधि तंत्र
● समयोचित् शिक्षायें भाग १,२,३ ● विराग मंथन
● रजत पुष्प ● कहानी सबसे सुहानी ● अक्षय निधि
● संस्कार की लहरें ● चलो चले प्रभुदर्शन को
● आध्यात्मिक पर्व (दशलक्षण धर्म) ● घर-घर की कहानी
● पर्यूषण निधि

विषयं नुक्रमं ण्किं

क्र.	विषय	पृष्ठ
१.	क्षमा	१
२.	क्रोध	३
३.	मार्दव (नम्रता)	६
४.	अहंकार	९
५.	आर्जव	११
६.	शौच	१४
७.	सत्य	१७
८.	संयम	२०
९.	तप	२४
१०.	त्याग	२८
११.	आकिञ्चन्य	३१
१२.	ब्रह्मचर्य	३२
१३.	निशंकित (विश्वास)	३५
१४.	नि:कांक्षित	३९
१५.	निर्विचिकित्सा	४२
१६.	अमूढ़दृष्टि अंग	४६
१७.	उपगूहन	४८
१८.	स्थित करण	५०
१९.	वात्सल्य	५१
२०.	प्रभावना	५४
२१.	ज्ञान मद	५६
२२.	पूजा मद	५७
२३.	जाति-कुल मद	५८
२४.	बलमद	५९
२५.	ऐश्वर्य मद अथवा ऋद्धि मद	६०
२६.	तप मद	६१
२७.	रुप (शरीर) मद	६२
२८	जुआ खेलना	६४
२९	मांस भक्षण	६६

३०	शराब सेवन	६८
३१	वेश्यागमन	७०
३२	शिकार खेलना	७२
३३	चोरी करना	७३
३४	परस्त्री सेवन	७५
३५	दर्शनविशुद्धि भावना / आस्था / सम्यग्दर्शन	७७
३६	विनय संपन्नता भावना / लघुता	८४
३७	शीलव्रतेष्वनतिचार भावना	८८
३८	अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग / ज्ञान	९१
३९	संवेग भावना	९५
४०	शक्तितस्त्याग भावना	९७
४१	शक्तितस्तप भावना	१००
४२	साधु समाधि भावना / सल्लेखना	१०३
४३	वैय्यावृत्ति भावना	१०७
४४	अर्हद् भक्ति भावना / भक्ति	११०
४५	आचार्य भक्ति भावना / गुरु	११४
४६	बहुश्रुत भक्ति भावना	११८
४७	प्रवचन भक्ति भावना	१२०
४८	आवश्यकापरिहाणि भावना	१२२
४९	मार्ग प्रभावना	१२५
५०	प्रवचन वत्सलत्व भावना	१२८
५१	अनित्यानुप्रेक्षा	१३०
५२	अशरण अनुप्रेक्षा / शरण	१३३
५३	संसारानुप्रेक्षा	१३६
५४	एकत्वनुप्रेक्षा	१३९
५५	अन्यत्वानुप्रेक्षा	१४२
५६	अशुचित्वानुप्रेक्षा	१४४
५७	आस्रवानुप्रेक्षा	१४६
५८	संवरानुप्रेक्षा	१४८
५९	निर्जरानुप्रेक्षा	१५०
६०	लोकानुप्रेक्षा	१५३
६१	बोधि-दुर्लभ अनुप्रेक्षा	१५५

६२	धर्मानुप्रेक्षा	१५७
६३	जिनेन्द्र दर्शन	१६२
६४	णमोकार मंत्र	१६३
६५	कर्म	१६५
६६	पुण्य-पाप	१६६
६७	एकता	१६८
६८	अनुशासन	१६९
६९	अपराध बोध	१७१
७०	पश्चाताप	१७३
७१	दुर्जन	१७४
७२	निंदा	१७५
७३	भ्रान्ति	१७६
७४	मित्रता	१७७
७५	प्रसन्नता	१७९
७६	लक्ष्य	१८०
७७	वैराग्य	१८२
७८	समय	१८४
७९	संत समागम	१८५
८०	संस्कार	१८७
८१	सदाचार	१८८
८२	रात्रिभोजन	१९१
८३	राग	१९२
८४	आँख	१९३
८५	नयावर्ष	१९४

विरागामृत

विरागामृत